TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180743
UNIVERSAL
LIBRARY

नारद की वीणा

•

लक्ष्मीनारायण मिश्र

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82 M67N Accession No. G.H 1559

Author मिश्र, लक्ष्मीनारायण।

Title नारद की वीणा।

This book should be returned on or before the date last marked below.

नारद की वीणा

नारद की वीणा

लेखक

लक्ष्मीनारायण मिश्र

किताब महल
इलाहाबाद

मूल्य २)

प्रथम संस्करण, १९४६

मुद्रक—मगनकृष्ण दीक्षित, दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

आमुख

श्री मिश्र जी के प्रसिद्ध नाटक 'सिन्दूर की होली' की भूमिका में आचार्य डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने पूरे एक युग पहले लिखा था "मिश्र जी हिन्दी नाटक साहित्य में युग-प्रवर्त्तन करना चाहते हैं एतदर्थ हम उनका स्वागत करते हैं" और अभी पिछले वर्ष उनके पिछले नाटक 'गरुड़ध्वज' की भूमिका में रायबहादुर श्री पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने उक्त नाटक की विशेषताओं के साथ उन्हें इस युग का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी नाटककार माना है। हिन्दी के प्रायः सभी आलोचकों ने मिश्र जी को आधुनिक हिन्दी नाटक का जन्मदाता कहकर किसी भी उनके आलोचक का अब काम कठिन कर दिया है उन्होंने जब साधारण दैनिक बातों के प्रसंग में इस नाटक 'नारद की वीणा' का विषय प्रवेश लिखने के लिए मुझे कह दिया तो मैं कुछ देर के लिए इस विचार में पड़ गया, कि क्या मेरे लिए इस प्रकार के अधिकार का साहस भी ठीक होगा? वह जानते हैं कि मैं साहित्यिक नहीं हूँ, वह यह भी जानते हैं कि मेरा उनका निकट का सम्बन्ध जो युगों से चला आ रहा है उसके कारण भी निर्पेक्ष दृष्टि रखने में मैं एक प्रकार से अक्षम हो जाऊँगा। फिर भी मुझे यह कार्य करना ही पड़ा। निश्चय ही इसके मूल में मेरा वह मोह है जिसके बल पर मैं उन्हें आज भी लक्ष्मीनारायण कहता हूँ—यह मेरी विवशता है। पाठक इसे ही मेरी क्षमा-याचना समझ लें।

इस नाटक में जो कथानक लिया गया है उसका सम्बन्ध भारतीय इतिहास के अज्ञात सन्धिकाल से है। वह युग सन्धिकाल माना जाय इस कथन में सत्य कितना है यह भी विवाद की बात है। कतिपय गवेषकों का मत है, कि 'आर्य' कही जानेवाली कोई जाति बाहर से

नहीं आई। अधिकतर विद्वानों को यह धारणा है कि यह 'आर्य' जाति उत्तर सुदूर, या निकटवर्त्ती से, भारत के पश्चिमोत्तर सीमा मार्गों से यहाँ आई, और यहाँ के मूल निवासियों को पराजितकर बस गई। आज का साधारण भारतीय अपने को इन्हीं आर्यों की संतति मानता है। कुछ प्रचारक-विचारक इस प्राग-ऐतिहासिक युग में आर्यों की प्रचलित कुरीतियों और आचार विधान के आधार पर संस्कृति की गति के प्रतिकूल आचरण के प्रचार के लिए कृत संकल्प से हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन का 'वोल्गा से गंगा' नामक आख्यान ग्रंथ इसी प्रकार का श्रम है किन्तु, पुरातत्त्व के अधिकांश विद्वान् यह बात नहीं मानते कि अल्पसंख्यक विदेशी आर्य यहाँ के बहुसंख्यक मूल निवासियों की संस्कृति और उनकी जीवन-विधि के ध्वंस में सही अर्थों में सफल हुए। निस्संदेह इस देश के वे मूल निवासी जो आर्यों के आने के पहले इस देश में बसे थे जिन्हें हम द्रविण कहते हैं, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, साहित्य, शिल्प-दर्शन और सबसे अधिक योग में इस तथाकथित आर्य जाति से बहुत अंशों में बढ़े-चढ़े और समुन्नत थे। इनके कारण आर्यों में कुरीतियों का प्रचार हुआ यह बात इतिहास से सिद्ध नहीं हो सकती! इस संबंध में श्री भगवतशरण उपाध्याय का यह कथन अधिक सही और इतिहास-सिद्ध है :—

"पहले हम 'वोल्गा से गंगा' के ऐतिह्य पर विचार करेंगे। 'पुरुधान' और 'अंगिरा' नाम की पाँचवीं और छठी कहानियों में असुर जाति का वर्णन है। यह असुर जाति कौन-सी है इसका निर्णय राहुल जी नहीं कर सके हैं। दो नितांत विभिन्न जातियों को आपने मिलाकर एक कर दिया है, एक के शरीर पर दूसरे का बाना पहनाया है। इन दोनों जातियों में एक तो असीरिया के असुर हैं, दूसरे सिंधु काँठे में बसने-वाले द्रविड़! इन दोनों के शरीर और चरित्र, संस्कृति और निवास-स्थान की ऐसी खिचड़ी की गयी है कि पुरातत्त्ववेत्ता को भी उनको यथास्थान करने में साधारण कठिनाई न होगी! 'स्वात और कुभा

(काबुल) नदियों के संगम पर असुर नगर बसे हुए हैं। उनके नगर सुन्दर हैं। उनमें पक्की ईंटों के मकान, पानी बहने की मोरियाँ, स्नानागार, सड़कें, तालाब आदि होते थे। एक प्रकार के रहनेवाले घर को ही लीजिए। इसमें सजे हुए एक या दो बैठकखाने, धूमने तक (चिमनी) के साथ अलग रसोई-घर, आँगन में ईंट का कुआँ, स्नानागार, कोष्ठागार, शयनागार। साधारण बनियों के घरों को मैंने दो-दो, तीन-तीन तल के देखे हैं। क्या बखान करूँ असुरपुर की उपमा मैं सिर्फ देवपुर से ही दे सकता हूँ।' निसंदेह निर्देश मांटगुमरी (पंजाब) ज़िले के हड़प्पा, लरकाना (सिन्ध) ज़िले के मोहन जोदड़ो और कलात (बिलोचिस्तान) के नाल आदि स्थानों की प्राचीन सभ्यता के प्रति है। 'ये 'असुर' आम तौर से क़द में छोटे होते हैं।...... लोग नाटे-नाटे होते हैं, रंग ताँबे जैसा! बड़े कुरूप। नाक तो मालूम होती है, है ही नहीं—बहुत चिपटी-चिपटी, भौंड़ी-भौंडी। वे कपास की रुई का कता-बुना कपड़ा पहनते हैं। शिश्न और उपस्थ को पूजते हैं, शक्ति, गदा धारण करते हैं।'

यह चित्र सैन्धव सभ्यता का है परंतु जो चित्र आपने उनका अन्य संबंध में खींचा है वह उनका नहीं हो सकता। असुरों को आपने हज़ारों दास-दासी रखने और बेचनेवाला कहा है। इसी प्रकार उनमें वेश्या-प्रथा का प्रचार, उनके राजा का देवतुल्य और निरंकुश शासक तथा पुरोहित का दुर्विनीत और लोलुप होना आदि कहा गया है। उनके चिकित्सा में दक्ष होने की बात भी साधारणतया स्वीकृत कर ली गयी है। राजा और पुरोहित का तो आर्यों में भी उन्हीं से आना कहा गया है। सारी सैन्धव सभ्यता में सिवा एक नर्तकी की मूर्ति के अन्य कोई प्रमाण इस संबंध में नहीं मिलता! और स्वयं इस बात को कभी सिद्ध नहीं करता कि असुरों में वेश्या-प्रथा का प्रचार था। नर्तकी को वेश्या नहीं कहा जा सकता! वैसे तो स्वयं ऋग्वेद में 'स्तनों को खोले हुए नर्तकी' का ज़िक्र है परंतु इससे तो आर्यों में वेश्या-प्रथा का होना

नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार ऋग्वैदिक आर्यों में राजप्रथा पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुकी थी जैसा राजाओं की अनेक पीढ़ियों से ज्ञात है! हरिश्चंद्र, स्वनय भाव्य, ऽ ऽश्व, पुरुकुत्स, त्रस दस्यु, दिवादास, सुदास, रथवीति आदि पारस्परिक राज-शृंखला प्रस्तुत करते हैं जिनमें से कुछ तो ऋग्वैदिक काल में भी अत्यंत प्राचीन कहलायेंगे। यही बात ऋग्वेद के पुरोहित वर्ग के विषय में भी कही जा सकती है। प्राचीन से प्राचीनकाल में भी आर्यों में पुरोहिताई मौजूद थी। सारे ऋग्वेद के ऋषि पुरोहित हैं, वे चाहे ब्राह्मण रहे हों या नहीं। यह आसानी से स्वीकार किया जा सकता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय-वर्ग के पिछले अर्थात् अपेक्षाकृत आधुनिक मंत्रकाल में बने परंतु पुरोहित, (जो दोनों वर्गों के होते आये थे क्षत्रिय भी जैसे विश्वामित्र और देवापि) तो उस प्राथमिक वेद के प्राचीनतम मंत्रकाल में भी थे! भारद्वाज आदि सारे ऋग्वेदकार 'मंत्रद्रष्टा' ऋषि हैं और उस वेद का धर्म सिवा यज्ञ परक होने के और कुछ नहीं है। यज्ञों में पुरोहित का होना अनिवार्य है इससे उसका आर्यों में असुरों (सैन्धव द्रविणों) से आना नितांत असत्य है। इसके विरुद्ध राजा, पुरोहित-वेश्या, दास-दासी, चिकित्सा आदि का कहीं भी सैन्धव पुरातत्त्व के स्तरों में संकेत तक नहीं मिलता। विद्वान् लेखक से यह भद्दी भूल क्योंकर हो गई यह आसानी से बताया जा सकता है। जिन ऊपर निर्दिष्ट बातों का सैन्धव सभ्यता में अभाव दिखाया गया है वे असुर जाति में मिलती हैं और पूर्णतया, वह असुर जाति भारतीय नहीं ईराकी हैं''।

('हंस', मई, १९४९)

इस नाटक में नाटककार का प्रधान अभीष्ट यही रहा है कि श्री राहुल जी ने प्रचार के आवेश में आर्यों की जो सब ओर से श्रेष्ठता और द्रविणों की जो सब ओर से हीनता सिद्ध की है उसके परिहार के साथ ही साथ भारतीय जीवन दर्शन के वे तथ्य अवश्य आ जायँ जो कि विदेशियों सम्पर्क के हर अवसर पर इस देश में प्रकट हुए हैं। "जब जब

विदेशियों का सम्पर्क इस देश के साथ होगा कुछ काल के लिए वैष्णव विधान चल पड़ेगा किंतु शैवध्वज हिरण्यकश्यपु सनातन है और सनातन रहेगा" इस नाटक के एक पात्र देवदत्त का यह कथन है। जिसका साक्षी इस देश का सारा इतिहास है। जब-जब यहाँ विदेशी आये वैष्णव धर्म अग्रसर होता गया। इस नाटक के अनुसार भौतिक शारीरिक शक्ति में प्रबलतर आर्य जाति यहाँ के द्रविणों को युद्ध में हरा देने में तो सफल रही, किंतु समय के प्रवाह के साथ बुद्धि तत्त्व में मूल निवासियों से पराजित होकर उन्हीं के आचार-विचार, और संस्कृति में लय हो गयी। वेदोत्तर काल में समाविष्ट देव प्रतिष्ठा और तत्संबंधी दार्शनिक मीमांसा तथा सारा दार्शनिक विकास इस देश में इस बात का प्रमाण नहीं तो निश्चित रूप से निर्देशक तो अवश्य है।

द्रविणों को आर्यों ने किस प्रकार अपना गुरु और पथ-प्रदर्शक माना इसके एक से एक बढ़कर रोचक चित्र इस नाटक में आँख के सामने से निकल जाते हैं। जिस समय सुवास्तु के आर्य अभी सूखा चमड़ा ही बजाते हैं उसी काल में आर्य कुमार सुमित्र नैमिषारण्य में वीणा का अभ्यास कर रहा है। आर्य कुमारी चन्द्रभागा के शब्दों में "चन्द्रभागा के उस पार के लोग अभी धम्-धड़ाम्, धम्-धड़ाम् सूखा चमड़ा ही बजा पाते हैं तुम्हारी वह वीणा देख लें तो बिना किसी भी योग के वे उड़ने लगें"। द्रविणों की सभ्यता कुछ जादू की तरह आर्यों पर ऐसी छा गई कि वे युद्ध और ध्वंस के व्यापार से छूटकर शिल्प और गृह के निर्माण में लग गये। उनका उद्धत रूप यमुना के उस पार ही तक रह सका। इस पार वे ज्यों-ज्यों बढ़ते गये गंगा, गोमती और सरयू के किनारे पहुँचते-पहुँचते कला और दर्शन की सिद्धि में शील और विनय से भर गये! यही इस नाटक का समन्वय है! जो परम्परा से हमारी धरती का सोना है।

यह पक्ष कहाँ तक मान्य है इसका निर्णय तो अभी बहुत कुछ भविष्य की ऐतिहासिक सोधों पर टिका है! यहाँ तो बस इतना ही कहा जा

सकता है कि इस दृष्टिकोण में जितनी विचित्रता है उतना ही आकर्षण की है! इस नाटक के नारद, नारायण, नर, विजयकीर्ति, प्रह्लाद, मेनका आदि पात्र भारत के मूल निवासियों के नेता हैं। दूसरी ओर संकृत, सुमित्र, सोमश्रवा, चन्द्रभागा आर्यों के—'यायावरों' श्वेताङ्गों के प्रतीक हैं। नाटककार को किस वर्ग की श्रेष्ठता प्रतिष्ठापित करनी है इस तरह का विचार कुछ भ्रामक होगा। किसी पक्ष की श्रेष्ठता नहीं, दोनों पक्षों का समन्वय और भविष्य का सम्मिलित जीवन इसका उद्देश्य है, जो हमारी आज की समस्याओं की ओर भी निश्चित संकेत करता है। नाटक की संगति में मिश्र जी का निरूपण मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक है जिसके कारण एक बार नाटक उठा लेने पर बिना समाप्त किए रुकने का जी नहीं करता।

नाटक का नाम है 'नारद की वीणा'। देवर्षि नारद का अध्यात्म क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। इनकी ऐतिहासिकता योगशास्त्र की परम्परा में इनके रूपकात्मक महत्त्व के सामने गौण पड़ जाती है, ऐसी ही इनकी वीणा भी है। इस नाटक में मेनका का नारायण से कथन है:—"नारद आत्मा हैं आप बुद्धि और नर शरीर हैं"। जागृत विवेक का कोई भी व्यक्ति इस उक्ति का अर्थ लगा लेगा। नाटककार के एक स्पष्ट संकेत की चर्चा यहाँ अधिक उपयोगी होगी। सम्भवतः इस संकेत में कला के प्रतिः—तथा कथित ललित कलाओं के प्रति नाटककार का दृष्टिकोण भी सन्निहित है। नाटक में सुमित्र के वीणा-वादन के प्रसंग में नारायण नर से कहते हैं कि:—"गंधर्वों का नाश हो गया इसी संगीत, नृत्य एवं नाद की साधना में" किंतु नारद की वीणा के सम्मुख मूक और सशब्द प्रशंसा करते महर्षि, आचार्य शिष्य-वर्ग, मेनका, यहाँ तक कि संकृत—कोई भी नहीं थकता!

पाठक इस अंतर्निर्देश को दृष्टि से ओझल न होने देंगे, यही मेरी कामना है। यह पक्ष कैसा है यह बात स्पष्ट होकर रहेगी। आशा है इस

निर्देश का मर्म समझ लेने पर कला साधना के नाम पर होनेवाले अनाचार से समाज और साहित्य दोनों का कल्याण होगा !

नाटक के पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विचार करना, हर पाठक की दृष्टि और रुचि की बात है। यह कहना ही अधिक ठीक होगा कि मिश्र जी यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण के साथ हिन्दी साहित्य में आये थे, अनुभूति और सत्य की परख इनकी ज्यों-ज्यों बढ़ती गई है उनकी यह शक्ति भी बढ़ी है। घटनाक्रम की स्वाभाविकता, संवाद और व्यापार की मनोवैज्ञानिक शक्ति इस नाटक में भी उतनी ही अच्छी उतरी है जितनी कि 'मुक्ति का रहस्य' के बाद की सभी रचनाओं में।

किसी भी साहित्य स्रष्टा की कृति की उपयोगिता हम इस बात से निर्धारित करते हैं कि वह किस रूप में और किस सीमा तक विचारोत्पादक है। उसकी अनुभूत की जो झलक हम उसकी कृति में पाते हैं उसे लेकर हम स्वयं क्या अनुभव करते हैं; हमारे मन में किस तरह के भावोद्रेक होते हैं; किस अंश तक हम तब तक के लिए अशांत चित्त हो जाते हैं जब तक कि विचार क्रिया के फलस्वरूप हम किसी निष्कर्ष पर स्वयं पहुँच नहीं जाते ! इस प्रसंग में मैं विभिन्न प्रसंगों में कही गई कुछ बातों का उद्धरण देने के लोभ का संवरण प्राक्कथन के विस्तार भय को जानकर भी नहीं कर पाता :—

—जीवन में जब गोपनीय को अधिक अवसर मिलने लगता है·· समाज के प्रति विद्रोह की भावना भी व्यक्ति के भीतर बढ़ने लगती है !

··मनुष्य ने तो देव सृष्टि की थी, केवल अपनी चेतना को स्थिर करने के लिए···।

—उपासना से मनुष्य के अहंकार का शमन होता है···अहंकार से छूटकर वह अपना लगाव सब जगह देख पाता है······भेद के मिट जाने पर व्यक्ति सब ओर से समाज के लिए उपयोगी हो जाता है !

—पुरुष पौरुषहीन रहकर किसी भी दूसरे गुण से पूज्य नहीं हो

—प्रकृति जिसे पराजित करना चाहती है उसे क्रोध देती है।

—प्रकृति में तप और युद्ध साथ-साथ लगे हैं। प्रकृति में जो केवल युद्ध देखते हैं हिंसक हैं और जो केवल तप देखते हैं कायर हैं! हमने प्रकृति में केवल तप देखा इसीलिये ये यायावर आज हमारे प्रभु बन रहे हैं! पूर्वजों की इस भूल का फल हमने भोग लिया!

—दो नदियों के मिलने में पहले संघर्ष होता है फिर एक धार हो जाती है!

—बजाने को उसे वीणा न देकर शंख दिया जाय! उसका पौरुष उभर आयेगा। संगीत, नृत्य और चित्र पुरुष को पुरुष नहीं रहने देते।

इन सूक्तियों और महावाक्यों में, जीवन और बुद्धि के वे निश्चित अंश हैं जिनके बल पर कोई भी रचना काल और सीमा का अतिक्रमण कर जीवित रह सकती है। सम्भवतः नाटककार ने उपलब्ध इतिहास के पहले का सारा काल जिसमें आर्यों और द्रविड़ों, कदाचित् मंगोलो का भी सम्मिश्रण और समन्वय हुआ दिखलाया है। जिसमें उस काल की प्रधान समस्यायें, भौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के विभेद और फिर अन्त में सभी धाराओं के मिलने में संस्कृति की जो एक ही सिन्धु, गंगा या ब्रह्मपुत्र, बह चले उसे समुद्र तक पहुँचाया है। यह मैं इसलिये कह रहा हूँ कि अपने पिछले नाटक 'गरुड़ध्वज' में उन्होंने मौर्य-काल से लेकर ईसा की पाँचवी शताब्दी तक की सभी धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक, समस्याओं और संघर्षों का जीवित चित्र उपस्थित किया है जिसके बारे में उस पुस्तक की आलोचना में ('विशाल भारत' मई सन् १९४६) में आलोचक महोदय ने लिखा है: "इस नाटक के कथानक को इस ढंग से नियोजित किया गया है कि ईसा पूर्व पहली शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी तक की सामाजिक स्थिति चमक जाती है। कवि ने इस नाटक में उस काल के सामाजिक द्वन्द्व भाव को इस खूबी से दिखाया कि उसके पात्र उस समाज के सहज साध्य अंग के रूप में अपना काम करते जाते हैं। इस तरह 'गरुड़ध्वज' में मिश्र जी

यथार्थवादी कला का प्रदर्शन बहुत आसानी से कर जाते हैं। मिश्र जी का यह यथार्थवाद जहाँ एक ओर उस काल के प्रति ईमानदार साबित होता है, वहाँ वह आधुनिक बुर्ज़ुआ राष्ट्रीयता की भावनाओं का भी प्रतिनिधित्व कर जाता है।''

इस नाटक के कथानक, इसकी प्रवृत्तियों और समस्याओं का नियोजन कुछ ऐसे ढंग से हुआ है कि जिसमें प्रायः चार हज़ार वर्षों का प्राग-ऐतिहासिक काल झलकने लगता है?

ये हैं श्री लक्ष्मीनारायण के इस नाटक के परिचायक मेरे शब्द। अन्त में मैं इनकी प्रतिभा के प्रस्फुटन के सम्बन्ध में इनसे बड़े होने के नाते आशीर्वाद देता हुआ हिन्दी साहित्य में इस नाटक को रखता हूँ।

श्री कृष्णजन्माष्टमी
सं० २००३ वि०
राधारमण इंटर कालेज,
प्रयाग।

शुकदेव चौबे, एम० ए०,
प्रिन्सिपल

नारद की वीणा

पहला अंक

[सूर्य निकल चुका है। पहाड़ी भूमि एक ही साथ कई रंगों में रँग उठी है। दूर पर पहाड़ की ऊँची चोटियाँ कहीं चाँदी की और कहीं-कहीं सोने की चादर लपेट रही हैं। निचले भाग में शाल, देवदार और दूसरे ऊँचे पहाड़ी पेड़ एक ही साथ हरे, नीले और फिर उजले हो रहे हैं। और भी नीचे सरक कर समतल भूमि है जो हर तरह के छोटे-बड़े पेड़ों की घनी छाया में लुकती-छिपती सी दिखाई पड़ रही है। जहाँ तहाँ शमी और अशोक वृक्षों को घेर कर चबूतरे बने हैं। जंगली फूलों और बेलों की लताएँ यहाँ-वहाँ बेतरतीब—जैसे अपनी स्वतन्त्र सत्ता के गर्व में ऐंठ सी रही हैं। उत्तर की ओर पहाड़ से उतर कर पतली किन्तु तीव्र दूध की धार सी नदी इस समतल भूमि से आगे बढ़कर घने वन में लोप हो गई है। नदी से कुछ दूर दक्खिन सरक कर पेड़ों के सहारे पूर्व और पश्चिम को लम्बे होते हुए एक पाँत में फूस के छज्जे पड़े हैं जिनके सामने नदी तक सपाट मैदान है जो नदी की ओर गिरता गया है। दूसरी ओर भी मैदान है जो समतल है और कदाचित इधर के पेड़ जो काट कर निकाल लिये गये हैं, उनके सीधे तने और शाखाओं के बल्ले गाड़कर इस मैदान और छज्जों को चारों ओर से घेर कर गोष्ठ सा कर दिया गया है। इस मैदान के ठीक बीच में एक छायादार ऊपर की ओर मन्दिर के शिखर की तरह उठता हुआ अशोक का पेड़ है, जिसके लाल फूल गहरे नीले पत्तों में आँख मिचौनी कर रहें है।

इस मैदान से सीधे पश्चिम ऊपर की ओर शाल के बल्लों की दीवार पर देवदार के मोटे पल्लों की छत सी बना दी गई है और इस प्रकार दीवार के बीच में चारों ओर से प्रवेश-द्वार की तरह खुली होने के कारण

जैसे वह लकड़ी का घर बन गया है, जिसमें प्रवेश की जगह सब ओर है। इसके भीतर से चारों ओर के दृश्य देखे जाते हैं। इस कुटी से एक ओर तो नदी, छज्जे, मैदान के बीच का अशोक और उसके चारों ओर की समतल भूमि दिखाई पड़ती है और दूसरी ओर निकट ही पहाड़ के भीतर जल-कुण्ड दिखाई पड़ता है जिसमें विभिन्न रंग के कमल खिले हैं और हंस तैर रहे हैं। उसके आगे पहाड़ों के नुकीले शिखर नील हरित वृक्षों के ऊपर उठ रहे हैं। कुटी के पूर्व ठीक कुटी की लम्बाई भर छोटा चबूतरा है, जिस पर आगे की ओर शमी के नीचे यज्ञ-कुण्ड में अग्नि जल रही है जिसमें दो कुमार बारी-बारी धूप और अन्य सुगंधित समिधा डाल रहे हैं।]

पहला

[कौशेय उत्तरीय सम्हालते हुए समिधा अग्नि में डाल कर दूसरे की ओर एकटक देखता है] तुम्हारी नाक लाल हो रही है जी और भौंह के बाल भी तन उठे हैं। सर्दी तो नहीं लगी ?

दूसरा

[उत्तरीय के छोर से नाक और ललाट दबाकर] सौम्य !

पहला

[बायें हाथ से लम्बे पिंगल केश पीछे की ओर फेंक कर] नहीं जी सोम······और फिर सौम्य और सोम में अन्तर कितना है ?······ और फिर सोम तो जिस किसी का भी विशेषण हो सकता है।

दूसरा

[हँसी की मुद्रा में जिसके लम्बे भूरे बाल उसके मुख का अधिक भाग ढँक लेते हैं।]

जिस किसी का भी ? (दायें हाथ की तर्जनी हिलाकर) अभी तो प्रातःकाल है ? जब संध्या होगी और कुछ रात तक···अब तो सोमपान का

समय प्रातःकाल तो रहा नहीं। थोड़ा दिन रहते या थोड़ी रात जाते। सुना है यहाँ तो अभी और भी नियम बनने वाले हैं। नियमों की जाल और भी घनी बने······

पहला

[**तिरछे देख कर**] कहाँ नियमों की जाल घनी हो रही है जी···?

दूसरा

[**अन्यमनस्क होकर**] यहीं···यहीं···इस आश्रम में...

पहला

[**कौतूहल से**] अच्छा तब···

दूसरा

[**उसी तरह अन्यमनस्क**] इस आश्रम की ख्याति और भी बढ़ेगी। पश्चिम के जनपदों के लिये यहाँ मुक्ति जो गढ़ी जा रही है जिसके लिये गान्धार और सुवास्त से कुमार··कुमारियाँ यहाँ आ जुटे हैं··और भी आयेंगे···आते ही जायेंगे···तब तक···जब तक··कि वे एकदम मुक्त न हो जायँ।

[**अगड़ाई लेकर ऊपर आकाश की ओर देखता है**] मुझे तो आज सर्दी लगी है तुम्हारा अनुमान ठीक है।

[**नाक और ललाट मलने लगता है**]

पहला

अभी तो गर्मी का आरम्भ है। कुछ दिनों तक तो अभी ऊपर से गल-गल कर हिम आता रहेगा। आज तो जैसे पानी पर धार चढ़ गई थी।

दूसरा

मुझे तो लगा···कुछ अंग कट कर जैसे अलग हो गये हों··· और अब इस आश्रम के जड़ नियमों में मैं निभ न सकूँ······

पहला

[**दाँतों में ओठ दबाकर उसकी ओर देखता है उसकी भवें तन उठती हैं**] सुमित्र !

दूसरा

[**मुस्कराते हुए**] ऐं सोमश्रवा ! क्या हुआ ···कहीं कुछ चुभ तो नहीं गया ?

सोमश्रवा

इसकी चिन्ता मुझे नहीं···मेरी पुरुप प्रकृति को····

सुमित्र

अच्छा···अच्छा·· [**सिर हिला कर**] लेकिन यहाँ नारी प्रकृति की बात भी क्या है ?

सोमश्रवा

[**नदी की ओर हाथ उठाकर**] वहाँ एक बार अपनी आकृति तो देख आओ···जल में···जल में अपना प्रतिबिम्ब···किशोरी की तरह तुम्हारे केश चेहरे पर किस तरह फैल रहे हैं । आधा बैसाख निकल भागा । अभी भी तुम्हारे लिये इतनी सर्दी है कि···तुम्हारी नाक लाल हो गई·······भवें तन गई और कपोलों पर जैसे किसी ने रक्त चन्दन का लेप चढ़ा दिया हो । यह सुकुमारता नारी प्रकृति की नहीं तो क्या पुरुष प्रकृति की है ?

सुमित्र

तुम शरीर के देव हो सकते तो···दानव होना तो चाहोगे नहीं··· किन्तु मन के क्या हो ? अभी-अभी तुम स्नान कर आ रहे हो ।

और मैंने जब स्नान किया था वह चाँदी की धार भी काली पड़ गई थी [**नदी की ओर हाथ उठाकर**] सारा आश्रम सो रहा था। आकृति सदैव सच ही नहीं कहती।

सोमश्रवा

[**कुण्ड में समिधा डालकर**] हम्म ···हूँ···

सुमित्र

आश्रम के कुमार···कुमारी सभी [**रुककर**] जो उपाध्याय देवदत्त के साथ नीचे जनपद में गये हैं···प्रदर्शन के लिए···

सोमश्रवा

ऐं······तो तुम्हारे लिये यह प्रदर्शन है ? अनध्याय के दिन स्नातक जनपदों में जाते ही हैं अपनी आवश्यकता के संचय और जनपदों के जीवन और विधान के सीधे अनुभव के लिये ····यही तो विधान है।

सुमित्र

प्रदर्शन···केवल प्रदर्शन ··विधान बनते हैं बस प्रदर्शन के लिये [**सहसा खड़ा होकर**] मनुष्य सदैव सब जगह वही है···जो है। जनपद में हो या आश्रम में उसकी बनावट में अन्तर नहीं पड़ता। सब कहीं बस······यही एक रूप·········एक ही तरह से जीना और मरना··· और सपने तो वहाँ उसे [**पहाड़ की ओर संकेत कर**] उस शिखर पर भी वही दिखाई देंगे जो किसी जनपद के सुरम्य शयन कक्ष में···· ·· और उस समय तो अभी सारा आश्रम सो रहा था···केवल [**गम्भीर होकर सोचने लगता है**]

सोमश्रवा

[**उत्सुकता से उसकी ओर देखकर**] केवल···

सुमित्र

[**जैसे स्वंय अपने ही से कह रहा है**] केवल एक छाया···उधर

जहाँ ··रात भर···आग जलती रही है। प्रकाश में अशोक की डाल पकड़े ······

सोमश्रवा

[**जिसकी आँखे चमक उठी हैं**] हूँ तो रात तो जिधर कुमारियाँ रहती हैं उधर ही आग जली थी। और उस अशोक के नीचे तो कुमारों के लिये जाने की आज्ञा नहीं है···रात या··दिन को भी नहीं। तब फिर वह अवश्य ही कोई कुमारी थी।

सुमित्र

[**सोचने की मुद्रा में**] सम्भव है।

सोमश्रवा

और रात भर तुम उसे देखते रहे हो ? ठीक न ?

सुमित्र

दूर से······बहुत दूर से जी !

सोमश्रवा

और फिर यदि समीप भी गये हो तो···

सुमित्र

[**संयत स्वर में**] तो क्या इस विषय में ज्योतिष की सहायता नहीं मिलेगी तुम्हें··तुम्हारा विज्ञान तो सब से निश्चित् है ? क्या हुआ और क्या होगा, कितनी आयु, कितना धन, एक शब्द में होनी का सारा रूप ही············

सोमश्रवा

[**उँगलियों पर कुछ गिनता हुआ**] अच्छा तो कह दूँ तुम्हारी होनी··लेकिन हाँ, कहो तो कह दूँ···

सुमित्र

कहो भी…कल्पना से बहुत कुछ कहा जा सकता है… तुम्हारे ज्योतिष में भी यदि कल्पना को जगह होती……

सोमश्रवा

इधर देखो [**उसकी आँखों में एक टक देखता हुआ**] आश्रम के नियमों के तुम जो इतने कटु आलोचक हो गये हो उसका कारण मैं तो जानता हूँ। अभी कल तुम्हें (**पूर्व की ओर हाथ उठाकर**) वहाँ… नदी के निकट जो पेड़ों का झुरमुट है…अशोक के नीचे बीणा बजाते देखा था। तुम्हारे लिये तो अब यह प्रसिद्ध हो चुका है कि तुम उस जन्म के गन्धर्व हो। एकान्त में काव्य और संगीत की साधना के लिये तुम बाहर चले जाते हो। लेकिन कल तुम्हारे साथ अशोक के लाल फूलों की माला तुमने उसके सिर पर जो डाल दी थी, जिसमें उसके केश सिमट गये थे।

सुमित्र

तो क्या तुम लोग वन और पर्वतों में कुमारियों के साथ नहीं रहते और फिर तुम जिस रुचि से इस विषय को देख रहे हो…कदाचित यहाँ यह विधान चलेगा कि वयस्क कुमार कुमारियों के साथ न घूमें।

सोमश्रवा

लेकिन हम कभी भी एक जोड़े नहीं होते। हम कई जोड़े एक साथ होते हैं। और मैंने तो देखा वह तुम्हारे शरीर का टेक देकर…उसका आधा शरीर तुम्हारे शरीर पर था। उस समय तो तुम्हारी वीणा आप ही आप बज रही थी। तुम्हारा स्वर आकाश में कम्पन भर रहा था। किसी ऊर्वशी के वियोगी पुरुरवा की तरह तुम्हारी आँखों से जल बरस रहा था…लेकिन तुम्हारी ऊर्वशी तो प्रायः तुम्हारी गोद में थी तो फिर!

सुमित्र

झूठ है सौम्य ! न तो मेरी आँखों से जल चला और न वह मद्र-कुमारी मेरी गोद में थीं। इधर कई दिनों से जब मैं वहाँ वीणा बजाता हूँ······पता नहीं कहाँ से वह मेरे सामने जाकर बैठ जाती है। कल मैंने उससे योंही पूछ दिया माला लोगी ? उसने सिर हिलाया और मैंने वीणा से माला उतार कर उसके सिर पर डाल दिया। देखा नहीं किस तरह वह उसके सिर से टिकी रही। कितनी छोटी थी वह माला अशोक की ? और तुम सौम्य ! कदाचित् परिहास के लिये क्या क्या कह गये।

सोमश्रवा

तो तुम रो नहीं रहे थे और वह तुम्हारी गोद में नहीं थी ?

सुमित्र

[**विस्मय से**] देखा है मित्र तुमने कभी मुझे झूठ भी बोलते···?

सोमश्रवा

कभी नहीं। किन्तु कल जो मेरी आँखों ने देखा····उसके लिये··· उसके लिए····

सुमित्र

देखो, आज जब मैं वहाँ फिर वीणा बजाने लगूँ······तुम किसी प्रकार आज उसे वहाँ न जाने देना। सम्भव है मेरा सत्य तुम्हें आज···· उसका नाम क्या है ?

सोमश्रवा

[**हँसते हुए**] तो मैं यह भी मान लूँ कि तुम उसका नाम भी नहीं जानते ?

सुमित्र

[**ध्यान से देखकर**] देखो···मैं तुम्हें कुछ मान लेने के लिए तो कहता नहीं मैं तो अपनी बात कहता हूँ····मानना या न भी मानना

तो तुम्हारे मन की, तुम्हारे अपने विवेक की बात है। जब कोई हरिन का बच्चा···जब तुम्हारे शरीर को आकर सूँघ देता है तब क्या तुम उसका नाम पूछते हो? या जब कोई तीर सीधे तुम्हारे हृदय की ओर आ पड़ता है, तब क्या तुम्हारे पास इसका अवसर रहता है कि तुम उसके पंख पर उस धन्वी का नाम पढ़ो, जिसने उसे तुम्हारी ओर लक्ष्य कर चलाया है?

सोमश्रवा

यह तो पता नहीं तुम क्या कह गये?

सुमित्र

[**गम्भीर स्वर में**] इसीलिये कह रहा हूँ कि आज तुम उसे रोक रखना। सम्भव हो सके तो उसका नाम भी जान लेना। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि इस आश्रम में आये उसे प्रायः एक मास हो रहा है। मैं उसे और कहीं भी नहीं देख पाता। केवल उस अशोक कुञ्ज में जब मैं अकेले अपनी वीणा के साथ रहता हूँ·· वह नित्य ही जैसे कोई हरिण का बच्चा जाकर वहाँ बैठ जाय जिसे वहाँ से भगा देना भी सदाचार के विरुद्ध हो या·· बिना किसी भी आडम्बर या बनावट के वह आ जाती है उस सीधे तीर की तरह, जिसका लक्ष्य होता है सीधा हृदय और जिसके प्रतिकार का कोई यत्न भी नहीं होता

[**ऊपर आकाश की ओर देखने लगता है**]

सोमश्रवा

हूँ तो तुम आश्रम के वातावरण को रोगी बना रहे हो!

सुमित्र

किस तरह जी···?

सोमश्रवा

यही जब तुम्हें जागना चाहिये तुम सोते रहते हो।

सुमित्र

कब जागना चाहिये यह तो मैं अभी तक नहीं जान सका ?

सोमश्रवा

तुम आश्रम छोड़कर चले जाओ नहीं, तो मुझे महर्षि से कहना पड़ेगा।

सुमित्र

लेकिन महर्षि से कहोगे क्या ? यह भी तो कहो ?…

सोमश्रवा

यही कि तुम प्रेम-पीड़ा से व्याकुल हो। तुम्हारा उपचार होना चाहिये।

सुमित्र

तो क्या महर्षि के पास इस रोग की भी औषधि है ? [**पर्वत-शिखरों की ओर देखते हुए**] वह देखो शिखर के नीचे कोई मानव आकृति…· हम लोगों को तो उधर देखने में भी भय लगता है।

सोमश्रवा

[**पर्वत की ओर देखते हुए**] मेरा तो अनुमान है कि वे महर्षि नारायण हैं। उधर जाने का साहस तो अभी आश्रमवासियों में किसी दूसरे को नहीं हुआ। आचार्य नर भी उस ऊँचाई पर जा सकेंगे कि नहीं। पर कल संध्या को तो वे भी उधर ही गये। आज अग्नि होत्र अब तक न हुआ। [**कुण्ड की ओर देख कर**] अरे यहाँ तो अग्नि देव भी समाप्त हो रहे हैं। [**समिधा उठाकर अग्नि में छोड़ने लगता है सुगंधित धूम ऊपर उठकर आकाश की ओर बढ़ता है**] उपाध्याय देव दत्त ने कहा था अग्निहोत्र के समय तक ऋषि नर आ जायेंगे किन्तु अभी तक तो…·

[नेपथ्य में "हरि ओऽम्, हरि ओऽम्, हरि ओऽम्, हरि ओऽम्" की ध्वनि होती है। सोमश्रवा और सुमित्र हाथ जोड़ कर हवन-कुण्ड के एक ओर खड़े हो जाते हैं। महर्षि नरायण का प्रवेश। गम्भीर प्रशस्त आकृति। उभरा हुआ ललाट। श्वेत लम्बी दाढ़ी और सिर पर श्वेत जटाएँ। उभरा हुआ श्वेत रोमश वक्ष। लम्बी आँखे, ऊँची नाक। कंधे पर तूणीर, बायें हाथ में धनुष और दायें हाथ में लम्बा तीक्ष्ण भल्ल।]

नारायण

प्रियदर्शन ! सुमित्र ! सोमश्रवा ! इस तीन दिन और तीन रात के मेरे प्रवास में आश्रमवासी सुखी और प्रसन्न तो रहे ? किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक विकार किसी कुमार, कुमारी में तो नहीं देख पड़ा ? हिंस्र जीवों का कोई उपद्रव तो नहीं रहा ?

दोनों

आपके प्रभाव से सर्वत्र कल्याण रहा।

नारायण

नर अभी आया या नहीं ? मुझे तो विश्वास हो रहा है आ गया होगा। उसकी यात्रा निर्विघ्न तो रही ?

सुमित्र

आचार्य कल एक पहर दिन रहते आये। किन्तु यह जान कर कि आप तीन दिन से उत्तरापथ गये हैं, उधर ही वे भी....

नारायण

[विस्मय से] ऐं... **[दूर पर्वत की ओर देखने लगते हैं]** मेरी खोज के लिये यही न ? सम्भवतः मेरी रक्षा की भावना....किन्तु मनुष्य अपना बन्धन स्वयं बनाता है। इस स्थान पर मैं जब पहले पहल आया केवल मैं था... यह नदी थी...कुछ पेड़ भी थे। बहुतेरे तो मेरे

सामने लगे और समय बीतने के साथ इतने बड़े हुये। [**मुस्कराकर**] बाद को नर आया था और उसके बाद यह आश्रम इसके निवासी ... और अब इन लोगों को मेरी चिन्ता हो रही है। मैंने अपना बन्धन स्वयं बनाया [**शिखर की ओर हाथ उठाकर**] तीन दिन ...उधर तो मेरे महीने, वर्ष बीत जाते थे .. श्वेत मध्वद और पिंगल गरुड मेरे सहचर थे। हिम-वृष्टि के समय किसी ऊँचे शिखर की आड़ में हम सब नीचे सिर कर बैठ जाते .. जैसे हम सब एक ही परिवार के एक ही विधान के जीव थे। उनके साथ मेरे निकट भय न आ सका और आज तो जैसे मेरे भीतर भय सब ओर फैल रहा है। [**गम्भीर स्वर में**] सुमित्र !

सुमित्र

[**धरती की ओर देखकर**] जी ...

नारायण

यह क्या वत्स ! तुम्हारी दृष्टि इस तरह नीचे क्यों है ?

सुमित्र

[**उसी तरह नीचे देखता हुआ**] मैं आपके चरणों की ओर देखता हूँ।

नारायण

चरणों की ओर ? हूँ तो तुम समझते हो मैं इससे सन्तुष्ट हूँगा ?

सुमित्र

आचार्य की आज्ञा....गुरुजनों के चरण की ओर ही हमारी दृष्टि रहनी चाहिये। इस तरह हम गुरु-भक्त होंगे...हमारा विवेक ..

नारायण

और दूसरी ओर इस तरह तुम्हारा बहुत कुछ गुरु के लिये भी रहस्य और अन्धकार का विषय होगा। किन्तु नहीं...जीवन में जब,

गोपनीय को अधिक अवसर मिलने लगता है····समाज के प्रति विद्रोह की भावना भी व्यक्ति के भीतर बढ़ने लगती है। हम जितने ही सरल होंगे स्वस्थ और सुखी भी होंगे। जटिल और दुर्बोध होने पर तो हम स्वाभाविक भी न होंगे। और यहाँ तो मैं एक बात जानता हूँ जो स्वाभाविक नहीं है सत्य भी नहीं है। सोमश्रवा!

सोमश्रवा

जी····

नारायण

नर ने कभी कहा था ऐसा?

सोमश्रवा

इस यात्रा के पहले··दो प्रवचन··हमारा आचरण, व्यवहार कैसा किस तरह का होना चाहिये।

नारायण

तो तुमसे कहा गया··हम लोगों के सामने तुम्हारी दृष्टि सदैव नीची रहे।

सोमश्रवा

अभ्यास तो हम लोग महीनों से कर रहे हैं [उनकी ओर देखते हुए] किन्तु अभी भी भूल हो जाती है।

नारायण

[हँसते हुए] भूल हो जाती है रे!···जो स्वाभाविक नहीं है·· वह यदि न हो सके··तो उसे तुम भूल कहोगे? किन्तु तुम तो देख भी रहे हो मेरी ओर··लेकिन यह सुमित्र··यह तो प्रकृति बदलने चला है।

सुमित्र

नियमों के बिना आश्रम तो नहीं चल सकता....और जब तक मुझे यहाँ रहना है मुझसे भूल न होगी।

नारायण

जिस तरह यह पेड़ जहाँ है···वहीं रहेगा···वहीं फूलेगा, फलेगा और सूख भी जायेगा। प्रकृति ने इसे इस धरती में···[**सोचते हुए**] इस आश्रम में नियमों की श्रृंखलाएं बनेंगी। मनुष्य मनुष्य न रह कर देव या दानव बन जायेगा और फिर मनुष्य ने तो देव-सृष्टि की थी केवल अपनी चेतना को स्थिर करने के लिये। चेतना के स्थिर हो जाने पर तो देव भी बस मनोरञ्जन की वस्तु रह जाता है।

सोमश्रवा

अग्निहोत्र अभी तक नहीं हुआ।

नारायण

[**हवन-कुण्ड की ओर देखकर**] धूप की गन्ध तो आ रही है।

सोमश्रवा

अग्नि को जीवित रखने के लिये हम लोगों ने···

नारायण

पर्याप्त है। हमको यह हवन की विधि इसलिये रखनी है कि वे जो हमारे विजेता हैं···जिन्होंने शरीर और शस्त्र-बल से हमारी भूमि हमारे देश पर अधिकार किया है··उनकी यह इतनी सी विधि स्वीकार कर हम उन्हें अपनी विधि में खींचेंगे। आज जो शस्त्र विजयी हैं कल संस्कृति से पराजित होंगे।

[**सुमित्र की आकृति से विस्मय प्रकट होता है**] तुम्हें विस्मय हो रहा है सुमित्र! मूल वैदिक धर्म तो तुम जानते हो। चेतन मनुष्य की

उपासना जड़ तक ही सीमित और सन्तुष्ट रह सकेगी ! उस जड़ तक जो तभी तक है जब तक ये आँखें हैं। इन्द्र, वरुण, मरुत, अग्नि और सूर्य किसी नियामक शक्ति के वशवर्ती नहीं हैं ?

सोमश्रवा

तो हमारा···आर्य जनपदों का जड़धर्म अब चेतन होगा ?

नारायण

वह तो हो गया। तुम्हारे पूर्वजों ने उपनिषत् की मूलभूत ब्रह्म भावना को स्वीकार कर लिया और अब तो पुनर्जन्म की धारणा में तुम्हारे शव भी भस्म हो रहे हैं··गाड़ने की प्रथा तो, अब बीत गई है। उपासना से मनुष्य के अहंकार का शमन होता है··अहंकार से छूट कर वह अपना लगाव सब कहीं देख पाता है···इस वृक्ष में, उस नदी में, उस पर्वत में···भेद के मिट जाने में व्यक्ति सब ओर से समाज के लिये उपयोगी हो जाता है। [**नीचे आश्रम के कुञ्जों की ओर देखते हुए**] आज तो अनध्याय है तो····

सोमश्रवा

जी····

स्नातक किसी जन पद में गये होंगे ?

सुमित्र

जी आज तो पूर्व की ओर···

नारायण

लेकिन ··[**उत्तर की ओर आगे बढ़ते हुए**] ऐं वह क्या ? [**एक ही साथ तरकस से तीन बाण खींचकर कन्धे तक प्रत्यञ्चा की कुण्डली बनाकर छोड़ते हैं···और जैसे बाण की ही गति से नदी की ओर दौड़ पड़ते हैं। चीते की दहाड़ सुनाई पड़ती है। सुमित्र-सोमश्रवा भी उधर**

दौड़ते हैं और साथ ही नारायण भी बोल उठते हैं।] बस अब अन्तिम साँस ले। तुझे कम से कम इस आश्रम की मर्यादा तो रखनी ही थी। सुमित्र! चन्द्रभागा मूर्छित हो गई है, इसे मेरी कुटी में ले चलो और सोमश्रवा! तुम इस आततायी को खींचकर उधर कर दो···· चंक्रमण के नीचे। उपाध्याय देवदत्त के आ जाने पर···जिस तरह वह कहें इसका चर्म निकालना होगा। मेरी कुटी में सिंह के जो सात चर्म हैं····मेरे अपने निकाले···लवण और लेप से नरम किये हैं। मुझसे नर ने, नर से देवदत्त ने और अब देवदत्त से तुम सब को सीख लेना है। जिसे शतायु होना है उसका एकमात्र····एकमात्र आसन यह बाघम्बर है समझे! कौशेय और कर्पास आसन जो अब राज-परिषदों से उतर कर जन पदों में फैल रहे हैं, जन-जीवन के लिये घातक होंगे। अरे! सुमित्र! अभी तक तुमने उसे नहीं उठाया? काँप क्यों रहा है रे? हूँ····तो तुम उसे उठा न सकोगे इतने असमर्थ हो तुम? पुरुष, पौरुषहीन रहकर किसी भी दूसरे गुण से पूज्य नहीं हो सकता। बार-बार कहा मैंने इसी संगीत, चित्र और काव्य से गन्धर्वों की जाति ही इस पृथ्वी से उठ गई। रहने दो उसे मैं ले चलूँगा अब।

सुमित्र

[काँपते हुए स्वर में] जी···नहीं···ले चल रहा हूँ मैं।

नारायण

अरे! क्या हो रहा है तुम्हें···कदली-पत्र की तरह तुम्हारा शरीर काँप रहा है और बोलने में तो जैसे तुम्हारा कण्ठ बन्द हो रहा है। उस शिला की ओर क्या देख रहे हो···अच्छा तो···नहीं, उठा सकोगे तुम····नहीं··रहने दो····रहने दो···सम्हाल न सकोगे तुम। अभी केवल भय से मूर्छित है तुम्हारे हाथ से छूटकर गिरने पर तो····उठा ही लिया····अच्छा····इस तरह····इस तरह, यह हाथ कन्धे के ऊपर और

यह यहाँ घुटनों के नीचे। हाँ अब ठीक उठा लिया··सिर झुकने न पाये··अपने कन्धे पर···कन्धे पर उसका सिर आ जाने दो।

[चन्द्रभागा को उठाये सुमित्र दिखाई पड़ता है। उसका सिर सुमित्र की छाती से लगा है, लम्बे भूरे बाल नीचे की ओर फैल रहे हैं। घुटनों के नीचे पैर खुले हैं। उत्तरीय सरक कर सुमित्र की बाँह से लिपट गया है, जिससे उदर का कुछ भाग दिखाई पड़ता है। अन्तर वासक छाती पर पीछे की ओर बँधा है। मिश्रित श्वेत और लाल स्फटिक मूर्ति की तरह निश्चेष्ट चन्द्रभागा को उठाये सुमित्र कुटी के चबूतरे पर चढ़ता है। उसकी दृष्टि कभी दायें हो रही है कभी बायें····जैसे चन्द्रभागा के मुख की ओर वह देख नहीं सकता। कुटी के भीतर से नर का प्रवेश। नर उत्सुकता से सुमित्र की ओर देखते हैं]

नर

क्या हुआ इसे·· कहीं गिर न पड़ना? सीधे क्यों नहीं देखते? [मुस्करा पड़ते हैं चन्द्रभागा आँखें खोल देती है। अकस्मात् सुमित्र की आँखें भी नीचे हो जाती हैं और चन्द्रभागा की आँखों को देखते ही जैसे वह सिहर उठता है। गनगना कर उसे उसी तरह हाथों में उठाये वह वहीं धरती पर बैठ जाता है। नर आगे बढ़कर चन्द्रभागा को सम्हालते हैं। उनके हाथ के स्पर्श से चन्द्रभागा गिरती-सी खड़ी हो जाती है और भय से नर की ओर देखती है। उसकी साँस वेग से चल रही है, जिससे उसकी लम्बी पतली नुकीली नाक नीचे-ऊपर हो रही है। सम्हल-कर सुमित्र के हाथ से उत्तरीय निकाल कर पीठ और छाती पर डाल लेती है, जिससे उसकी छाती की धड़कन अब नहीं दिखलाई पड़ती। नारायण का प्रवेश। नर आगे बढ़कर उनका चरण छू लेते हैं नर का ऊँचा प्रशस्त ललाट। दाढ़ और मूँछ के गम्भिन काले बाल, कन्धे से नीचे लटकता बाघाम्बर।

नारायण

[**विस्मय से**] यह तुम्हारा सुमित्र भी विचित्र है। [**चन्द्रभागा की ओर संकेत कर**] इसे यहाँ तक ले आने में इसको यह गति हो गई। जैसे धरती में गड़ा जा रहा है। [**चन्द्रभागा को ओर संकेत कर जो उत्तरीय लपेट कर एकटक नदी की ओर देख रही है।**] और यह कुमारी भी तो बराबर स्वप्नलोक में रहा करती है। यहाँ यह इतनी कुमारियाँ हैं, किन्तु इसमें तो कभी कोई चेष्टा दिखाई नहीं पड़ी और आज तो थोड़ी चूक हो जाने पर भी इसे चीता उठा ले गया होता।

नर

चीता उठा ले गया होगा ? [**चौंक उठते हैं**]

नारायण

[**छज्जों की ओर हाथ उठाकर**] वहीं मरा पड़ा है। पूरे सात हाथ से भी बड़ा है।

नर

[**नदी के आगे घने वन की ओर संकेत कर**] वहाँ नीचे से आगया होगा। उधर जब कभी गया हूँ कहीं न कहीं चीते के चिह्न मिले हैं। और दो बार तो मेरे सामने ही ···एक तो मैंने····

नारायण

हाँ, तुमने वहाँ एक चीता मारा था लेकिन तब तक यह आश्रम ···

नर

आश्रम के हो जाने से उनके इधर आने में बाधा तो पड़ी है। किन्तु चीता धूर्त्त है और मनुष्य का मांस उसकी सब से बड़ी लालसा···

नारायण

[**मुस्कराकर**] इसीलिये तो लालसा के मूल में ही हिंसा मानी गई है।

नर

[**कुछ सोचकर**] किन्तु आज तो अनध्याय है यह फिर अकेली कैसे रह गई ?

[**नारायण की ओर एकटक प्रश्नसूचक मुद्रा में देखने लगते हैं**]

नारायण

मैं भी अभी आ ही तो रहा हूँ। आता तो आज भी नहीं। [**शिखर की ओर हाथ उठा कर**] उस अचल शान्ति में भी आज दिन निकलने के साथ ही मैं अनस्थिर हो उठा। जैसे कोई अनिष्ट की आशंका ··· कोई शक्ति मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे इधर खींच रही थी। मैं तुम्हारे लिये और यहाँ आ जाने पर यह ···

नर

[**मुस्कराकर**] मेरे लिये आशंका····?

नारायण

सदैव परिस्थिति पर हमारा वश नहीं····कभी-कभी हमें हार जाना भी होता है और हमारी यही असफलता हमें तत्त्व-चिन्तन की ओर प्रवृत्त भी करती है। पराजय सदैव जीवन का स्थिर मापदण्ड और मात्रा विवेक है। विजय में हम असावधान रहते हैं, इसलिये हमारा जितनी हानि विजय से होती है पराजय से नहीं। यहाँ इन दोनों से [**सुमित्र की ओर संकेत कर**] पता चला तुम कल यहाँ आते ही उत्तराखण्ड की ओर चले गये। मैं तुम्हारे लिये ···उधर अभी कितनी रहस्यपूर्ण प्रकृति है ···कुछ ऐसे ही विचार में [**चबूतरे पर आगे बढ़कर**] यहाँ आ गया।

नर

लेकिन चन्द्रभागा को चीते ने देखा कैसे····दिन में ···और वह अकेली भी कैसे रह गई····

नारायण

यहाँ मैं अभी पहुँचा ही था कि अकस्मात् मेरी आँखें [**नदी की ओर हाथ उठा कर**] उधर घूम गईं···चन्द्रभागा वहाँ·· वह जो लम्बी शिला है·· पाषाण-मूर्ति की तरह निश्चल बैठा थी और उधर पूर्व से वह पैर दबाता इसकी ओर पूरी लालसा में बढ़ रहा था। क्षण भर तो मैं सुन्न हो गया किन्तु फिर दूसरे ही क्षण एक ही साथ तीन बाण मार कर मैंने उसे गिरा दिया····फिर भी वह दहाड़ मार कर इसी की ओर सरक रहा था और यह भय से वहीं लुढ़क पड़ी···अब घोर संकट था····आधी दूर भी नहीं पहुँच सका था कि मैंने पूरे वेग से भल्ल चला कर मारा और जब सीधे उसकी गर्दन में भल्ल पहुँच गया, तब कहीं धरती पर लोट कर वह छटपटाने लगा। तुरन्त ही यह दोनों भी जा लगे। वह उसे खींचकर उधर चक्रमण भूमि की ओर कर रहा है। और [**सुमित्र की ओर संकेत कर**] इसकी दशा तो देख ही रहे हो।

नर

[**चबूतरे से उतरते हुए**] देखूँ कितना बड़ा है वह····उसका···

नारायण

मैं भी चलता हूँ। चर्म की व्यवस्था मैं कर चुका हूँ। पूरा का पूरा पूँछ तक निकाला जायेगा और सिद्ध हो जाने पर मैं उसी से इस चन्द्रभागा को पुरस्कृत करूँगा। चन्द्रभागा के उस पार अपने माद्रिक जनपद में ले जायेगी ?

[**नारायण के साथ नर का प्रस्थान**]

चन्द्रभागा

[**सुमित्र की ओर देखती हुई**] तुम बैठ क्यों गये ? [**सुमित्र चुप रहता है। उसकी दृष्टि अभी भी नीचे धरती की ओर है। चन्द्रभागा के लम्बे खुले केश उसके श्वेत पद्म मुख से नीचे लटक कर छाती और कमर पर हिल रहे हैं, जिनके भीतर से उसकी नील-श्वेत आँखें, झाँक रही हैं।**

अधोवस्त्र घुटनों तक समाप्त हो गया है। गोल सुडौल पिंडली के नीचे एड़ी और पैर के निचले किनारे अशोक के फूल की तरह टहटहे लाल हैं। कन्धे तक खुली बाहें-कौशेय रोमश लाल हथेली में पारिजात गुच्छ-सी उँगलियाँ दबा रही है] बोलोगे नहीं ?

सुमित्र

नहीं जानती मैं क्यों बैठ गया ?

चन्द्रभागा

[मुस्कराकर] नहीं तो ···इधर देखो····यह तो संयोग····रहा नहीं तो तुम क्या देख पाते मुझे ·· अब तक तो····

[पूर्व की ओर हाथ उठाकर] तुम्हें देखने ही तो आ रहा था वह भी ··उस बेचारे को तो प्राण ही दे देने पड़े····

चन्द्रभागा

सौम्य ! किन्तु वह मुझे केवल देखने ही नहीं आ रहा था।

सुमित्र

उसके लिये तुम्हारा जो भी उपयोग था····तुम्हारे सुस्वादु मास से उसकी क्षुधा-तृप्ति····और फिर अपनी जगह पर तो वह सही भी था।

चन्द्रभागा

और तुम्हारे लिये तो मेरा कुछ भी उपभोग नहीं है न ? तुम तो अपने स्थान पर सही भी न होगे ? [उसकी ओर एकटक देखती हुई] जाने भी दो [छाती पर हाथ रखकर] धौंकनी चल रही है यहाँ। आह ! दहाड़ के साथ ही मैंने देखा उसे····ओह ! ओह !

सुमित्र

क्या देखा····

चन्द्रभागा

असम्भव है। वह चित्र शब्द से न उतर सकेगा। [**काँपती हुई**] तुम पूछते हो मेरे लिये तुम्हारे मन में दया भी नहीं है? वह मुझे ले गया होता तो···तब तो तुम प्रसन्न होते। यहाँ इतने कुमारों में अकेले तुम···

सुमित्र

अकेले मैं··तुम जब से यहाँ आई हो और कुमारों के लिये··· तुम्हारा रूप और आकर्षण इन कुमारों के स्वाध्याय का विषय हो रहा है।

चन्द्रभागा

निर्लिप्त केवल तुम हो··और भी इतने निर्लिप्त कि तुम प्रसन्न होते मेरे मिट जाने पर भी ··

सुमित्र

निर्लिप्त हो चुकने पर तो क्या प्रसन्न···और अप्रसन्न भी क्या? और जो मैं निर्लिप्त हो पाता तब तो तुम मेरे लिये फिर कभी मिट भी न सकती। [**उत्साह के स्वर में**] तब तो मैं [**दोनों बाहों को आगे बढ़ा कर**] तुम्हें हाथों ही में उस शिखर पर पहुँचा दिये होता···इसी तरह··· इसी तरह हाथों में उठाकर।

चन्द्रभागा

शिखर पर पहुँचा देते या नहीं···कम से कम मुझे हाथों में लेकर बैठ तो गये। लेकिन इस तरह बैठ जाना·· यही तो मैं नहीं समझती····

सुमित्र

आचार्य नर ने कहा सीधे देख कर क्यों नहीं चलते ·· सीधे देखने में मेरी आखें जो····· तुम्हारी खुली आँखें पर पड़ गई ··पैरों के नीचे से धरती भाग निकली··· मैं करता ही क्या बैठ गया और···

चन्द्रभागा

हूँ तो उस दशा में भी···दयावश होकर भी तुमने मेरी ओर नहीं देखा। तुम देखते भी नहीं यदि आचार्य ने टोक न दिया होता। तुम सूखे पेड़ हो जिसमें पल्लव आयेंगे नहीं।

सुमित्र

अक्षयवट हूँ····अक्षयवट, जिसके पल्लव कभी गिरते ही नहीं। [**सिर हिलाकर**] जरा-मरण मेरे लिये नहीं है।

चन्द्रभागा

[**हँसती हुई**] अब यह ठीक कहा··और इसीलिये भीतर स्पन्दन भी नहीं है।

सुमित्र

बस तुम्हारा, यही जानना मुझे बचा भी सकेगा। हाँ····किन्तु जिस समय मैं वहाँ दिन ढलने पर वीणा बजाने लगता हूँ तुम वहाँ क्यों जाती हो?

चन्द्रभागा

मेरे कान में जब तुम्हारा गीत···वीणा के स्वर में रोक नहीं पाती···उस तरह खिँच जाती हूँ जैसे अजगर के मुँह में हरिन खिँच जाता है। इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है?

सुमित्र

तो तुम तो मेरे सामने कुछ दूर पर बैठ जाती हो?

चन्द्रभागा

हाँ पहले तो तुमसे दूर पर ही बैठती हूँ।

सुमित्र

और फिर···

चन्द्रभागा

और फिर स्वर-सधान में ज्यों-ज्यों संसार तुम्हारे लिये मिटने लगता है तुम्हारी आँखों से आँसू निकल कर तुम्हारे कपालों पर ढुलकने लगते हैं मैं तुम्हारे समीप पहुँच जाती हूँ ।

सुमित्र

और तब ··

चन्द्रभागा

[**गम्भीर स्वर में**] तुम्हारी जाँघ पर सिर रख कर दोनों हाथों में तुम्हारी कटि घेर लेती हूँ ।

सुमित्र

[**गनगना कर**] और तब···

चन्द्रभागा

न तो तुम्हारे हृदय में स्पन्दन मिलता है न तुम्हारे शरीर में रोमांच । किसी अनजाने शिल्पी ने जैसे स्फटिक की शिला काट कर तुम्हारी मूर्ति गढ़ दी हो ···जिसकी उँगलियाँ किसी मन्त्र के प्रभाव में वीणा के तारों पर खेलती हों ।

सुमित्र

तब सोमश्रवा सच कह रहा था ।

चन्द्रभागा

कहे होगा । मैं इस रहस्य में रहती हूँ अब क्या होगा····क्या होगा अब ! मैं किसी बड़े विस्मय [**बाल पीछे की ओर फेंक कर**] किसी बड़ी अनहोनी की साँस रोक कर प्रतीक्षा करती हूँ····तब तक वह नित्य आ जाता है । उसकी भूखी आँखे देखकर······जैसे मछली पानी में चली जाय ।

सुमित्र

तुम भी पानी में चली जाती हो ?

चन्द्रभागा

उसे और क्या कहें ?

सुमित्र

आज तुम वहाँ न जाना ।

चन्द्रभागा

[**विरोध के स्वर में**] क्यों ? मैं तुमसे कुछ माँगती तो नहीं। अपने से जाती हूँ····अपने से चली भी आती हूँ ।

सुमित्र

आज तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है···तुम्हारे पुराने आवरण उतर जाने चाहिये ।

चन्द्रभागा

आ····वरण उतर तो सकेगा···जब वह केवल आवरण हो। लेकिन जो अनुभूति होकर तह पर तह जम गया है···जिसकी जगह रक्त मांस सबके भीतर ···सबके भीतर··· [**उत्तरीय हिला कर**] उसे उतार दूँ इस उत्तरीय की तरह ! इस कंचुकी की तरह···· [**छाती पर हाथ रखकर**] खोल दूँ इस अन्तरवासक की तरह···करूँ क्या ? [**आर्द्र कण्ठ से**] अपनी शक्ति के बाहर कहाँ तक जाऊँगी ? अपनी शक्ति से बाहर निकल जाने पर तो मृत्युका वरदान मिलता है !

सुमित्र

[**मुस्करा कर**] तो मृत्यु का वरदान तुम नहीं चाहती ···तुम्हें उसका भय है····

चन्द्रभागा

बिलकुल नहीं··· आज तो वह इतने पास आकर भी लौट गया। और जानते हो क्यों····?

सुमित्र

तुमने उसे स्वीकार नहीं किया और क्या ?

चन्द्रभागा

इतनी स्वतन्त्र मैं नहीं हूँ कि मृत्यु से छूट निकलूँ। अभी मैं दरिद्र थी सब ओर से दरिद्र···उसने मेरा अभाव देख लिया। उसे अपनी भूल सूझ गई और वह आज लौट गया। कभी आयेगा लेकिन मैं तब सब ओर से पूरी रहूँगी।

सुमित्र

सब ओर से पूरी····?

चन्द्रभागा

[**दोनों हाथों से चक्र बनाकर**] सब ओर से पूरी।

सुमित्र

किस तरह····

चन्द्रभागा

[**एक साँस में**] तुम्हें देवता से मनुष्य बना कर····

सुमित्र

[**उठकर उसके पास आता है**] देवता से मनुष्य बनाकर····पर मैंने कहा कब कि मैं देवता हूँ।

चन्द्रभागा

इसी लिये तो तुम देवता हो····कह देने पर तो मनुष्य भी नहीं रहते। नहीं····नहीं इस तरह न देखो मुझे भय लगता है।

सुमित्र

[**असमञ्जस में**] किस तरह देखूँ ? किस तरह ? न देखूँ तब नहीं....देखूँ भी तब नहीं।

चन्द्रभागा

बस इस तरह देखो... इसी तरह मुस्करा कर। आँखें ऐसी ही गीली गीली....

सुमित्र

[**बायें हाथ से उसका कान पकड़ कर दायें हाथ से उसके कपोल पर चपत लगाता हुआ**] यह तुम मुझे क्या बना रही हो ?

चन्द्रभागा

उहँ... कह क्यों दिया ?... यह भी कोई कहने की बात है ? कोई किसी के क्या बनाता है ? आँधी आ जाती है कोई आँख खोल कर देख तो पाता नहीं किधर जायँ .. कहाँ जायँ ? इस लिये आँख मूँद कर जो जहाँ रहता है वहीं रुक जाता है। [**गर्दन टेढ़ी कर**] जिस दिन तुम यह न कह सकोगे....जिस दिन तुम्हारी शंका मिट जायेगी ...तुम मनुष्य हो जाओगे।

सुमित्र

और उस दिन तुम सब ओर से पूरी हो जाओगी। तुम्हारा अभाव मिट जायेगा।

चन्द्रभागा

और उसी दिन तुम्हारा भी अभाव तो मिट जायेगा।

सुमित्र

मुझे तो कोई अभाव नहीं है ?

चन्द्रभागा

इसलिये कि तुमने अभी तक उसका अनुभव नहीं किया। [**उसका हाथ पकड़ती है**] तुम्हें इसका अनुभव नहीं तो क्या इसकी सत्ता ही मिट गई।

सुमित्र

और यदि कभी भी अनुभव न हो तो···

चन्द्रभागा

तब भी अभाव तो अभाव रहेगा ···अन्धे को चन्द्रमा न देख पड़े और बहरे को कोकिल की कूक न सुनाई पड़े ·· तब भी चन्द्रमा भी रहेगा और रहेगी कोयल भी।

सुमित्र

[**जैसे थककर**] क्या हो रहा हूँ मैं यह ? तुम यहाँ क्यों आईं ?

चन्द्रभागा

प्रकृति ने तुम्हें जिस लिये बनाया था तुम वही हो रहे हो और यदि मैं यह कहूँ कि तुम्हारे ही लिये मैं यहाँ आई थी।

सुमित्र

तो तुम डेढ़ सौ योजन से मेरा स्वप्न देख रही थी ···मान लूँ इसे मैं····

चन्द्रभागा

स्वप्न क्यों···इसे सत्य क्यों नहीं कहते ?

सुमित्र

इसलिये कि मैं स्वप्न और सत्य का भेद जानता हूँ।

चन्द्रभागा

[**तिरछे देखती है**] तुम जानते हो ···अच्छा तो उस कुञ्ज में वीणा बजाते समय तुम सत्य के वशीभूत रहते हो या स्वप्न के ···

सुमित्र

[**बात बदलने की चेष्टा में**] कह दिया तुम आना न वहाँ अब···

चन्द्रभागा

इतनी दूर से यहाँ तक तुम्हारे लिये आ कर भी ···

सुमित्र

तो मैंने निमन्त्रण दिया था····कब ?

चन्द्रभागा

मेरे लिये तो ऐसा ही रहा···

सुमित्र

किस तरह···

चन्द्रभागा

मेरे चारों ओर चेतना जब भाँवर देती···आकाश में चन्द्रमा हँसता होता·· पारिजात की गन्ध से वायु सुम सुम होता··· मैं तुम्हें इसी तरह साकार अशोक कुञ्ज में वीणा बजाते देखती। मन में आया··· हंस मिथुन जिधर उड़ेगा··· तुम उसी ओर मिलोगे। तुम्हारी आकृति का रंग हर साँस में क्यों बदल रहा है ?

सुमित्र

मुझे रहस्य में डाल रही हो तुम···

चन्द्रभागा

हंस मिथुन इसी ओर उड़ कर आया··· और बिना इस रहस्य के तो हम दरिद्र हो उठेंगे।

सुमित्र

एक ही साथ हंस मिथुन इधर आया····?

चन्द्रभागा

एक साथ पंख में पंख जोड़कर···चलोगे ··हम भी एक हो साथ चन्द्रभागा पार करें।

सुमित्र

हंस मिथुन की तरह···लेकिन पंख तो हैं नहीं जोड़ेंगे क्या···

चन्द्रभागा

[उसकी बाँह पकड़ लेती है] इसी तरह तुम मेरी बाँह पकड़ कर चलोगे।

सुमित्र

किस लिये ? ··

चन्द्रभागा

हम साथ ही चन्द्रभागा पार करेंगे। माता से कहूँगी यह मेरे···

सुमित्र

क्या···

चन्द्रभागा

और तुम्हें पाकर माता धन्य हो उठेंगी।

सुमित्र

पिता क्या कहेंगे ? ···

चन्द्रभागा

पिता नहीं हैं···मैं दो वर्ष की थी पिता मरे।

सुमित्र

[विस्मय से] और तुम्हारी माता ने तुम्हें इतनी दूर भेज दिया !

चन्द्रभागा

सुना था···पूर्व में संगीत से जल बरसता है और अग्नि जलती है।

सुमित्र

और तुम वही जल बरसाने और आग जलाने यहाँ आई। देखो मैं तुमसे [**हाथ जोड़कर**] तुम अब कभी भी मेरे पास न आना···

चन्द्रभागा

[**जैसे उसकी बात न सुनकर**] गान्धार से पाँच कुमार उनके साथ दो कुमारियाँ भी उस रात मेरी माता के अतिथि रहे···वह कह रहे थे उत्तर पांचाल से और पूर्व गंगा के उस पार गोमती और मनोरमा के कछार में, हिमालय की निचली उपत्यका में, ऋषियों के ऐसे आश्रम हैं, जहाँ संगीत से जल बरसाया जाता है, अग्नि जलाई जाती है···जहाँ योग और श्वास साधना से मनुष्य आकाश में उड़ता है, जहाँ शव गाड़े नहीं जाते··चन्दन की चिता पर रख कर अग्नि लगा दी जाती है और शव पुनर्जीवित होकर लपटों के साथ स्वर्ग में पहुँच जाते हैं।

सुमित्र

और इसी रहस्य के लिये तुम हंस मिथुन के पंख पर बैठकर आ गई।

चन्द्रभागा

मैं हीं नहीं···उधर के सारे आर्य जन-पद पुरानी पद्धति छोड़ चुके हैं और इस नई के···जो अभी तक उनके लिये केवल रहस्य है···· देखते नहीं हो यहाँ मद्र और सुवास्तु क्या गांधार तक के कुमार कुमारी रहस्य लाभ के लिये आ डटे हैं ?

सुमित्र

और तुमने अभी कोई भी रहस्य नहीं देखा।

चन्द्रभागा

क्यों नहीं ..?

सुमित्र

क्या....?

चन्द्रभागा

चन्द्रभागा के उस पार के लोग अभी धम्म धड़ाम्, धम्म धड़ाम् सूखा चमड़ा ही बजा पाते हैं। तुम्हारी वह वीणा देख लें तो बिना किसी भी योग के वे उड़ने लगें। तुम जब उस अशोक कुञ्ज में··तुम्हारी आँखों से जब जल चल पड़ता है मैं रोक नहीं पाती। तुम्हारी जाँघ पर सिर रख देती हूँ, उसी समय वह सोमश्रवा····मेरी देह से आग निकलने लगती है। संगीत से जल बरसना और आग जलना तो मैं देख चुकी।

सुमित्र

और सब भी देख लोगी तब...किसी दिन मुझे चिता से उठकर लपटों के साथ स्वर्ग में भी जाते देख लोगी। [**चन्द्रभागा कातर दृष्टि से उसकी ओर देखती है और बायें हाथ से छाती दबा कर बैठ जाती है, जैसे कोई व्यथा दबा रही हो। उसकी आकृति धूमिल हो उठती है। नारायण के साथ नर का प्रवेश**]

नारायण

तो देवदत्त से नहीं कहा ?

नर

नहीं मैं चाहता था कि यह सूचना पहले आपको मिले।

नारायण

और यदि देवदत्त विद्यार्थियों के साथ समय पर न लौटें ? प्रह्लाद और नारद आ जायँ ?

नर

मेरा अनुमान है वे आते ही होंगे। इतना तो मैं कह गया था कि कल एक पहर के भीतर ही सब को आश्रम में लौट आना होगा।

नारायण

[**सोचने की मुद्रा में**] नारद के साथ प्रह्लाद··देवर्षि कुछ सीख तो नहीं देना चाहते उन्हें··

नर

मुझे कल विजयकीर्ति ने इतनी ही सूचना दी कि नारद के साथ प्रह्लाद बदरिकाश्रम की यात्रा को आ रहे हैं। उनके साथ कुछ थोड़े अनुचर और उनकी रानी होंगी। आज रात को यहीं विश्राम करें।

नारायण

हूँ....सम्भव है अहंकार....

नर

अहंकार कैसा? [**विस्मय से देखते हैं**]

नारायण

इधर मेरे आश्रम जितने हैं या यहीं क्यों और भी इस तरह के ज्ञान और संस्कृत के जितने केन्द्र ब्रह्मपुत्र और गंगा के बीच या दक्षिण स्वर्णरेखा और गोदावरी के तीर तक, सब कहीं कौशेय वस्त्र जो उन्होंने भेजा। और फिर, यह तो जानते हो कि प्रह्लाद मुक्त-हस्त हो रहे हैं ज्ञान और संस्कृति के प्रचार के लिये।

नर

तो इसमें अहंकार की बात कहाँ से....

नारायण

तुम सदैव आदर्श देखते हो....प्रकृति की ओर देखना अधिक ठीक है। दान के मूल में अहंकार बैठा रहता है। यहाँ तो वह सात्विक विचार है किन्तु लक्ष्य तो है निर्गुण हो उठना। सम्भव है प्रह्लाद इसी सात्विक विचार में...

नर

किन्तु वस्त्र और चीवर के लिये हम अब भी स्वावलम्बी हैं। अब तो कपास का सूत हमारा सहायक है नहीं तो हमें क्या हम बराबर वल्कल और मृगचर्म से काम चला लेंगे। मैं तो तुला बैठा था कि हम इस दान को अस्वीकार कर दें।

नारायण

हमारे पास जो जिस रूप में आयेगा नर ! हमें उसे स्वीकार करना ही होगा। तभी हम इस समाज के उपयोगी अंग बन सकेंगे। पश्चिम और पूर्व हमें दोनों को मिलकर एक करना है····इसीलिये मैं गान्धार से भी पश्चिम के कुमारों को यहाँ आदरपूर्वक स्वीकार करता हूँ और इसीलिये प्रह्लाद के दान को भी मैंने स्वीकार किया। फिर हम इस पर्वत और वन के अंग नहीं हैं। हम तो उस विराट मानव-समाज के अंग हैं जो हमारे भीतर अपनी मुक्ति, अपने सारे समाधान खोज रहा है ···और यह हम तभी कर सकेंगे जब हम पूर्व और पश्चिम दोनों ओर मनुष्य के भीतर विश्वास पैदा करें···

नर

किन्तु प्रह्लाद···और फिर यह कौशेय वस्त्र हमारा सब से बड़ा बन्धन भी होगा। हमारा स्वभाव इससे बदलेगा···हम उपभोग की ओर प्रवृत्त होंगे।

नारायण

[**हँसते हुए**] तब तो तुम फिर मनुष्य को नग्न प्रकृति में ले जाकर नग्न करना चाहोगे और यह भी जान लो उपभोग किसी वस्तु या पदार्थ विशेष के उपयोग के कारण नहीं मन की वृत्ति के कारण होगा। जीवन के लिये उपभोग कभी बुरा नहीं है बुरा होगा उपभोग के लिये जीवन। मनुष्य की बुद्धि के लिये नग्न रहना असह्य हो उठा उसने वल्कल और मृगचर्म का सहारा लिया। अब वही बुद्धि कौशेय और कर्पास वस्त्रों की ओर बढ़ रही है···इन दोनों ही दशाओं में बुद्धि तो अपने एक ही धर्म में है। जिस अंश तक हमारी बुद्धि गतिशील रहेगी उसी अंश तक हमारे उपकरण बदलते भी जायेंगे। [**मुस्कराकर**] आर्य जनपदों में यह कौशेय वस्त्र जो स्नातकों के साथ चला जाता है हमारे विजेताओं के लिए विस्मय और कौतूहल की वस्तु हो रहा है।

विजेता समझने लगे हैं उनका यह आर्यदम्भ केवल पाशविक है बुद्धि तो उन्हें हमसे लेनी होगी और इतना ही क्यों···हाँ दशपुर में तुम्हें संकृत ने क्या कहा ?

नर

[**मुस्कराकर**] केवल संकृत ने ही नहीं····इस तीन महीने के प्रवास में जिस किसी भी आर्यजनपद में गया····सर्वत्र मुझे भी आर्य शब्द से ही सम्बोधित किया गया।

नारायण

मैं संकृत की बात पूछता हूँ।

नर

संकृत ने भी अधिकांश इसी आर्य सम्बोधन का प्रयोग किया। शील और व्यवहार में तो मैं उस व्यक्ति को महापुरुष समझता हूँ··· किन्तु···

नारायण

लेकिन वह जो मांसाहार पर तुला बैठा है उसे तुम····

नर

जी···मुझसे तर्क करने के समय केवल मुझे उत्तेजित करने के लिये वह उसी तरह कच्चा मांस खा रहा था। [**नाक सिकोड़ कर**] उहँ···मुझे लगा मैं सिंह से तर्क कर रहा हूँ। उसके ओठ से रक्त चू पड़ना चाहता था और वह जीभ से चाट लिया करता था। उहँ···· मनुष्य होकर····

नारायण

तुम यहाँ भूल रहे हो। मनुष्य के सदाचार के सम्बन्ध की तुम्हारी धारणा ही संकुचित है। सदाचार मनुष्य की रुचि से पैदा नहीं होता। उसे तो पैदा करती है उसकी धरती जिस पर वह पैदा होता है। इसी

धरती के गुण और स्वभाव के अनुसार हमारा स्वभाव बनता है। सकृत के पूर्वज जिस शीत प्रधान पर्वतीय प्रदेश में पैदा हुए थे वहाँ मांसाहार अनिवार्य था····अब हमारे देश में आकर हमारी धरती के गुण के अनुसार उनकी रुचि बदलेगी। वे भी मांसाहार छोड़ देंगे। और इधर प्रह्लाद की निष्ठा से जो बल हमें मिल रहा है···वह दिन दूर नहीं जब हमारे विजेता अपनी सारी पहचान भूल कर हम में मिल जायेंगे।

नर

लेकिन मैं तो किसी भी रूप में···

नारायण

[**मुस्कराकर**] तुम प्रह्लाद को स्वीकार नहीं कर सकते····इसलिये कि उसने षड्यन्त्र से अपने पिता का वध किया। लेकिन किस लिये···· राज्य के लिये···धन के लिये या धर्म के लिये ?

नर

धर्म के लिये पितृवध की कल्पना मैं नहीं कर सकता। धर्म··· जिसके मूल में इतना भीषण अधर्म हो कभी धर्म हो नहीं सकता। और फिर वह भी किस तरह···हिरण्यकशिपु ने तो यही समझा कि उसका बध करने वाला स्वयं अदृष्ट है। नर और सिंह का मिश्रित शरीर ···इस अनहोनी के लिये तो वह तैयार नहीं था और आज प्रह्लाद दान और दया से यह प्रचार कर रहा है कि हिरण्यकशिपु का बध स्वयं नृसिंह ऐसे रहस्य शरीर से भगवान ने किया। अन्धे और बुद्धिहीन समुदाय से तो इस प्रचार को बल मिलता ही···जब नारद भी इसी की पताका लेकर चल पड़े हैं और आज तो आप भी यही कर रहे हैं··· धर्म के लिए।

नारायण

[**मुस्कराकर**] गंगा की धार की तरह गतिमान होता है धर्म··

हम दिन में तीन बार स्नान करते हैं···केवल गतिशील रहने के लिये ··जहाँ तक हो सके अपने भीतर से जड़ को निकाल कर चेतन···चेतन के चिन्तन में हम आगे बढ़ रहे हैं। [**हँसते हुए**] शरीर के संस्कार की चिन्ता तो हमें है, किन्तु धर्म के संस्कार के लिये हम तैयार नहीं होते।

नर

[**गंभीर मुद्रा में सोचते हुए**] तब प्रह्लाद ने···

नारायण

प्रह्लाद ने नहीं···मनुष्य के ज्वलन्त विवेक ने····धर्म की प्रगति का अवरोध मनुष्य की प्रगति का अवरोध है····गंगा की धार को कोई ग्राह रोक दे····तुम क्या करोगे ?

नर

उसे····[**धनुष खींचने की तरह हाथों की मुद्रा बनाकर**]

नारायण

बस···हिरण्यकशिपु वह ग्राह था जिसने धर्म की गति ही रोक दी थी और प्रह्लाद ने वही किया जो तुम करते।

नर

किन्तु मनुष्य शरीर पर सिंह का चर्म चढ़ाकर···

नारायण

तो क्या हुआ ? ग्राह को मारकर धार को मुक्त करना है [**बायें हाथ की तर्जनी हिलाकर**] जिस बुद्धि और शस्त्र कौशल से काम लिया जाय····और जब धर्म की अवरुद्ध गति को मुक्त करने के लिये हिरण्य-कशिपु का बध हुआ····तब धर्म ने उसका बध किया और धर्म और भगवान को एक ही मान लेने में तुम्हें आपत्ति क्या होगी ?

[**नर विस्मय से उनकी ओर देखते हैं। नारायण मुस्कराते हुए आगे बढ़ कर नर का कन्धा दायें हाथ से पकड़ लेते हैं।**]

व्यक्ति-व्यक्ति अलग-अलग सोचे और अपने विचारों के अनुसार अलग-अलग कर्म करे, इससे अच्छा होगा हम सब····हमारा सारा समाज एक ही तरह सोचे और एक ही तरह कर्म करे। इस प्रकार हम टिके रहेंगे और यदि ऐसा नहीं हुआ तो हम निरन्तर के संघर्ष में····

नर

संघर्ष प्रकृति में कहाँ नहीं है ?

नारायण

सर्वत्र और····रहेगा भी ···किन्तु मनुष्य अपने विवेक से···त्याग और तपस्या से···इसे जीतेगा····और प्रकृति पर मनुष्य की यही सब से बड़ी विजय होगी। ब्रह्मवादी संघर्षशील नहीं रह सकता···इसे तो जानते हो न ? उसे तो सब कहीं बस एक वही सत्ता दिखाई देगी फिर वह संघर्ष किसके साथ रहेगा। यदि हम संघर्षशील होते···यदि हम भी शस्त्र की उपयोगिता समझते तो क्या हम आज पराजित रहते ? लेकिन नहीं हमें अब शस्त्र लेना होगा अपने विधान की रक्षा के लिए और उस रूप में हमारी हिंसा हिंसा न रहेगी···इसलिये कि हम उसमें आसक्त न रहेंगे। [**आकाश की ओर देखते हुए**] वह उधर से राजहंस उड़े चले आ रहे हैं·· कुछ लोग उधर से नदी पार कर रहे हैं।

नर

मेरा भी यही अनुमान है।

नारायण

आगे बढ़कर देखो···देवदत्त को अब तक आ जाना चाहिये था और प्रह्लाद के प्रति तुम्हारी भावनायें चाहे जो हों···कम से कम इतना संयम तो तुम्हें करना ही होगा कि उन पर तुम्हारी भावनाओं का प्रभाव न पड़े। हमें अपनी प्रवृत्तियों के ऊपर उठना है।

[**नर का प्रस्थान। नारायण कुछ देर पर्वत-शिखरों की ओर देखते हैं फिर चन्द्रभागा के पास जाकर बैठ जाते हैं। चन्द्रभागा भयभीत होकर उठना चाहती है**]

नारायण

नहीं···बैठी रह [**उसके सिर पर हाथ रखकर**] तुम मुझसे डर रही हो ?

[**चन्द्रभागा नीचे धरती की ओर देखती रहती है**] पुत्री पिता से भी डरेगी पगली बोल····

चन्द्रभागा

[**गनगनाकर**] नहीं तो····

नारायण

ना····झूठ नहीं··पूरे विश्वास से तुम जो चाहो मुझसे कह सकती हो।

चन्द्रभागा

मुझे कुछ कहना नहीं है।

नारायण

कहना तो है तुझे यह तो मैं तुझे देखकर समझ लेता हूँ। किन्तु कदाचित् तुझे साहस नहीं हो रहा है। यहाँ इतनी दूर··तुम आगई हो किसी विश्वास पर····और जो तुम मेरे सामने इस तरह रोती-रोती सी रही, तब तो यह कहना होगा कि हम लोग इस योग्य रहे नहीं कि तुम हमारा विश्वास करो····और यह बात मेरे लिये इस आश्रम, इसके निवासियों के लिए कितने खेद की होगी।

चन्द्रभागा

मेरी सारी सुविधा··· जिस दिन मैं आई उसी दिन आपने कर दिया।

नारायण

जितने कुमार और कुमारियाँ यहाँ हैं सब के प्रति मेरा यही कर्त्तव्य है और फिर तुम तो अपनी माता की एकमात्र सन्तान हो। मैंने तो उसी दिन कह दिया तुम्हें जब जो कहना हो मुझसे....

चन्द्रभागा

जी....

नारायण

तब तो तुम मेरा विश्वास करोगी ?

चन्द्रभागा

हाँ....करूँगी।

नारायण

[**मीठे स्वर में**] अच्छा यह तो बतलाओ उस शिला पर [**नदी ओर हाथ उठाकर**] तुम क्या कर रही थी ? देखो....नहीं....नहीं.... तुम्हारी आकृति पर फिर भय की छाया फैल गई। तुम निर्भय होकर मुझसे सच भर कह दो। मैं तुम्हें....सुखी करने का प्रयत्न करूँगा। [**चन्द्रभागा जैसे धरती में सिमटी चली जा रही है**] विश्वास करो.... बेटी....मेरा....विश्वास....न बोलोगी ?

चन्द्रभागा

[**उनकी ओर देखकर**] मैं उस पर नित्य चित्र बनाती हूँ और पानी से धो देती हूँ।

नारायण

[**उनकी आँखें चमक उठती हैं**] और आज मैंने उसे पानी से धो दिया। लेकिन किसका चित्र बनाती हो तुम....?

चन्द्रभागा

आपसे मैं भयभीत रहना नहीं चाहती इसलिये झूठ भी न बोलूँगी।

नारायण

बिलकुल नहीं···तुम मुझसे भयभीत क्यों रहोगी। तुम्हें मेरा विश्वास करना है और जहाँ विश्वास है वहाँ भय नहीं···बस तुम कह भर दो····

चन्द्रभागा

वह नाम मैं न ले सकूँगी····कहना चाहूँगी किन्तु शब्द न निकलेंगे। **[धरती की ओर देखने लगती है]**

नारायण

मैं तुम्हारे भीतर से यह भय निकाल देना चाहता हूँ जिसमें मैं तुम्हारा विश्वास पा सकूँ। **[उसकी पीठ पर हाथ रखकर]** तुम्हें इसलिये दण्ड देने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। तुम जिस विश्वास से मेरे पास आई, उसका मूल्य मैं कम न करूँगा। मेरी ओर से तुम्हें निश्चिन्त रहना है···निश्चिन्त और फिर तुम्हें सुखी रखने के लिये मैं कुछ भी कर सकता हूँ···बस मैं यह जान लूँ तुम्हें इससे सुख होगा।

चन्द्रभागा

मैं तो दो ही वर्ष की थी, मेरे पिता मर गये। आपको देखकर मुझे···जैसे मेरे पिता लौट आये···जो तब न जान सकी थी····अब···

नारायण

[प्रसन्न होकर] इसीलिये तो तुम्हें मुझसे कुछ भी नहीं छिपाना चाहिये।

चन्द्रभागा

मैं आपसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगी···केवल वह नाम मैं नहीं ले पाती····मैं विवश हूँ····नहीं तो····

नारायण

[सोचने की मुद्रा में] सघन वृक्षों के बीच वीणा बजाते हुए किसी कुमार का चित्र तुम बनाती हो....जिसकी आँखें प्रायः बन्द रहती हैं और जिनसे निकल कर आँसू उसके कपोलों पर....मैंने एक बार सुमित्र को इस तरह देखा था और उसे समझा भी दिया कि गन्धर्व और यक्ष योनि मिट गई इसी कारण से। इसी संगीत, चित्र और काव्य ने उनके भीतर से प्रवृत्ति का लोप कर दिया। यहीं था वह....गया कहाँ....

चन्द्रभागा

[कुटी ओर हाथ उठाकर] उधर....

नारायण

सुमित्र ! सुमित्र ! **[जनरव सुनाई पड़ता है। आश्रम में कुञ्जों की ओर कुछ कुमार-कुमारी बातें करते प्रवेश करते हैं]** अच्छा मिलेगा तुम जाओ....तुम्हें सुखी करना मैं चाहूँगा ...विश्वास करना....देवदत्त को यहाँ तो भेजो।

[वीणा की ध्वनि सुनाई पड़ती है]

नारायण

शब्द जड़ है....इसीलिये वह पण्डित है...नैयायिक है....स्थूल शरीर है, हाड़, मांस, त्वचा है। किन्तु उसके भीतर का रागात्मक अर्थ कवि है....गायक है, अनुभूति का मर्म है....जिसे हम प्राण कहते हैं। जिसके बिना शरीर कुछ समय में घड़ी दो घड़ी में गल कर दुर्गन्धि दान करता है। चन्द्रभागा ! यह देवर्षि नारद की वीणा है। देख रही हो वृक्षों की पत्तियाँ खड़ी हो गईं....पक्षी जहाँ जिस डाल पर हैं वहीं नत मस्तक हो उठे हैं। आकाश में कोई भी गति, कोई भी ध्वनि शेष नहीं... तुम्हें इस वीणा की ध्वनि कैसी लगी ?

चन्द्रभागा

[आनन्द के स्वर में] मैं तो जैसे ऊपर उठी जा रही हूँ।

नारायण

और जब सुमित्र वीणा बजाता है तब....?

चन्द्रभागा

[**गनगनाकर**] तब....तब तो जैसे नीचे धँसने लगती हूँ ।

नारायण

बहुत ठीक ...किन्तु बिना नीचे धँसे ऊपर उठा भी नहीं जा सकता । [**दूर पर हाथ से संकेत कर**] देख रही हो वह देवदारु का पेड़....सब वृक्षों के ऊपर, जो शिखर-सा दिखलाई पड़ता है [**चन्द्रभागा उधर देखती रहती है**] उसे देखकर तुम्हारे मन में क्या आ रहा है? वह उतने ऊँचे आकाश में बढ़ता हुआ कहाँ जा रहा है!

चन्द्रभागा

ऊपर....सबसे ऊपर.. स्वर्ग में....

नारायण

लेकिन उसकी जड़ें कितने नीचे पाताल में....नरक की ओर जा लगी हैं । बिना नीचे धँसे ऊपर कोई जा नहीं सकता । [**चन्द्रभागा उधर देखती ही रहती है**] राग और विराग तो एक ही साथ पैदा हुए थे....एक ही शरीर....एक ही सिर के दोनों ओर आँखें हैं ।

[**दक्षिण की ओर से नारद का प्रवेश । मुण्डित केश...लम्बी शिखा, कन्धे से लगी वीणा...लाली लिये पीत वर्ण ।**]

नारद

पात्र का विचार कर महर्षि !....इतना भार इस कन्या से अभी नहीं चलेगा और कहीं उस जन्म के वैराग्य से हार कर इस जन्म में राग से विजय करने गार्गी आई हो तब तो....

[**हाथ जोड़कर नतमस्तक नारायण आगे बढ़ते हैं...नारद भी नतमस्तक हो उठते हैं । दोनों परस्पर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं :**

चन्द्रभागा मुस्करा पड़ती है। नारायण नारद की बाँह पकड़कर कुटी की ओर बढ़ते हैं]

नारद

कहाँ ···

नारायण

कुटी में····

नारद

हूँ···किन्तु मैं गृही नहीं हूँ ···(**सिर हिलाकर**) मैं जिस घर में चरण रख देता हूँ···उसमें आग लगाकर तब बाहर निकलता हूँ····।

[**नारायण हँसने लगते हैं चन्द्रभागा भी हँस पड़ती है**]

नारायण

चिन्ता नहीं····आपका अग्निहोत्र ···हम दूसरी बना लेंगे।

नारद

अग्निहोत्र ! यह तो समुदाय का धर्म है····व्यक्ति का धर्म तो····और यदि नारद अग्निहोत्र करने लगेगा तब तो बँध जायेगा····उसकी गति रुक जायेगी····नहीं ···नहीं [**चारों ओर देखकर**] उन्मुक्त····सब ओर से उन्मुक्त आकाश की तरह ···अवरोध तो यमलोक का विधान है···· और यहाँ ···

नारायण

[**मुस्कराकर**] किन्तु वहाँ तो केवल आकाश ···व्यापक शून्य, न सूर्य, न चन्द्र, न तारे और यहाँ ये वृक्ष ···पर्वत···आकाश भी अवरुद्ध हो उठा है।

नारद

हाँ ये पर्वत, ये वृक्ष इस पृथ्वी की उपज हैं। पृथ्वी नित्य इस उपज की गति में आगे बढ़ रही है। यह गति पृथ्वी की जिस दिन रुक

जायेगी…जो हो चुका…हो चुका…बस वही पुराना नया अब कुछ नही होगा…नये का रास्ता जब बन्द हो जायेगा…यह पृथ्वी अनायास यमलोक बन जायेगी। [**चारों ओर देखकर**] कितना मनोरम है यह सब…कितना मुक्त है…मनुष्य यहाँ अनायास सचेत और गतिमान हो उठेगा। यहीं बैठें। प्रहलाद अभी नदी किनारे विश्राम कर रहे हैं। नर और विजय कीर्ति वहीं हैं।

[**नारायण संकेत करते हैं। चन्द्रभागा कुटी से बाघाम्बर लाकर बिछा देती है नारद के साथ नारायण बैठते हैं**]

नारायण

[**उत्सुक होकर**] बदरीवन भी मनोरंजन का स्थान बनेगा।

नारद

[**मुस्कराकर**] किस तरह ?

नारायण

तो क्या वहाँ प्रह्लाद मुक्ति के भाव से जा रहे हैं ? [**चन्दभागा कुटी में चली** जाती है] देवर्षि ! अभी प्रह्लाद की प्रकृति में राग को ही विकसित होना चाहिये। अभी तो उनकी दृष्टि जहाँ पड़े…सब कुछ रँग उठे…अनुराग के रंग में लाल लाल। पद्म उन्हें सुन्दरी के मुख-सा लगे और इन्दीवर उसकी आँखों जैसा…कुन्द उसके दाँत हों, और पल्लव उसके ओठ…सारा शरीर जैसे चम्पक के रंग में रँग दिया गया हो। यहाँ तक तो मैं प्रह्लाद को स्वस्थ…स्वाभाविक और सत्य समझूँगा।

नारद

[**हँसते हुए**] शक्ति और वैभव ने तो मुक्ति को ही मनोरंजन समझा है। तो फिर बदरिकाश्रम यदि मनोरंजन का स्थान बने तो इसकी चिन्ता ही क्या ! प्रह्लाद के मनोरंजनको भी लोक तो मुक्ति मान लेगा न ? जहाँ

यह प्रह्लाद का मनोरंजन है····वहीं लोक भावना की मुक्ति भी होगी और अब हमें जब लोक जीवन और लोक चिन्तन को एक रूप देना है हम उपकरणों की विशेष चिन्ता न करेंगे ।

नारायण

और फिर प्रह्लाद ने तो सब कहीं यही कहा होगा कि वे देवर्षि के साथ विरक्त होकर बदरिकाश्रम को चल पड़े····

नारद

हाँ····और सर्वत्र जहाँ कहीं जनपद पड़े···लोग बड़ी भक्ति और विश्वास के साथ उनका अभिवादन करते रहे हैं ···यह शंका कहीं नहीं हुई कि प्रह्लाद अभी युवा हैं····उनका संसार अभी दूसरा है । लोगों को जिस रूप में दिया गया उन्होंने विश्वास से उसे उसी रूप में उठा लिया । इस प्रकार हम सब किसी के हाथ में एक ही छड़ी देकर····

नारायण

सब किसी को एक ही रास्ता दिखा रहे हैं ।

[**नारद मुस्करा उठते हैं । नारायण खड़े होकर दूर पर जैसे किसी की प्रतीक्षा में देखने लगते हैं**]

पर्दा गिरता है

दूसरा अंक

[स्थान वही। कुटी के पूर्व अशोक और शमी वृक्षों को घेर कर जो चबूतरे बने हैं उन पर सामश्रवा के साथ दो और कुमार मृगचर्म बिछा रहे हैं। छज्जों की ओर कुमार-कुमारी भीतर-बाहर हो रहे हैं जिनकी चेष्टा और आकृति से उत्सुकता और कौतूहल जान पड़ता है। कुटी के उत्तर खड़े होकर नर पर्वत-शिखरों की ओर देख रहे हैं। सोमश्रवा एक बिछा हुआ मृगचर्म उठा कर अपने सिर पर रख लेता है, जिसमें कमर के ऊपर उसका सारा शरीर छिप जाता है। दोनों साथी एक दूसरे को संकेत कर मुस्कराते हैं और फिर हँसी रोकने के लिये हाथ से नाक और मुँह दबाते हैं।]

पहला

[हाथ से हट जाने का संकेत करते हुए] चलो भी···

दूसरा

[संयत होकर सोमश्रवा के सिर से मृगचर्म उतारने लगता है] क्या कर रहे हो आचार्य देख लें तो···

सोमश्रवा

[उसे रोकता हुआ] तो होगा क्या···सुमित्र की तरह उड़ चलूँगा। मुक्ति का अर्थ मैं समझ गया····बस इसी तरह प्रेम करो और फिर उड़ चलो।

पहला

किस तरह···

सोमश्रवा

सुमित्र की तरह···नहीं जानते ? [मृगचर्म दोनों हाथों पर सिर से

ऊपर उठा कर] कम से कम वह उसको तो देखता था और मैं तो किसी को नहीं देख पाऊँगा। बस आँखें बन्द हो जायँ…कुछ देखना नहीं फिर तो मुक्ति आप हो [**दाँत निकाल कर हाथ जोड़ता है**]

दूसरा

[**कठिनाई से हँसी रोक कर**] यह तो तुमने मुक्ति का सीधा रास्ता निकाल लिया ?

सोमश्रवा

सीधा न होता तो तुम्हीं लोग थे यहाँ आने के लिये ? चलना पड़े कभी किसी टेढ़े रास्ते पर तब पता चले और किसी दिन यहाँ से जाना तो पड़ेगा ही [**मुट्ठी बाँध कर खोल देता है**] झोली से निकाल-निकाल कर मुक्ति बाँट देना। पूर्वजों की जड़ उपासना अब चेतन हो रही है। चेतन का यह मोह….जन्म और मृत्यु से एकदम मुक्ति…आर्य संस्कृति पर इन मूल निवासियों की विजय होगी। अभी-अभी महर्षि ने कहा था…

पहला

क्या कहा था…

सोमश्रवा

यही जो मैं कहता हूँ। उन्होंने तो यह भी कहा शस्त्र से आज जो विजयी हैं संस्कृति से कल पराजित होंगे। आ रहा है समझ में। योग के रहस्य जो हम लोग यहाँ सीख रहे हैं….जल्दी से जल्दी इन मूल निवासियों में मिल कर अपनी पहचान खो देने के लिये।

दूसरा

बर्बर….जिसे तुम आर्यों की पहचान कहते हो वह तो हिंस्र पशुओं की पहचान है और यह भी तुम जानते हो कि मेरी नसों में तुमसे कहीं अधिक शुद्ध आर्य रक्त है। तुम्हारे पूर्वजों को उत्तर पांचाल पहुँचे युग

बीते····युग····हमारे पूर्वज अभी भी मूलस्थान से पश्चिम हैं और इस मुक्ति के मोह की ओर तुम्हारे ही पूर्वज पहले आकर्षित भी हुए····।

सोमश्रवा

और तुम्हारे पूर्वज बाद को···यही न? पर इससे होता क्या है? हमारे पूर्वज पहले इस भ्रम में पड़े तुम्हारे बाद को····

दूसरा

भ्रम [**रोष और विस्मय से उसकी ओर देखता है**]

पहला

तो तुम लोग अब लड़ बैठोगे···ऐसे नहीं···ऐसे नहीं···भिड़ कर देख लो। जहाँ तक लड़ बैठने की बात है····मनुष्य अभी पशु से आगे नहीं बढ़ा फिर बात-बात में यह सिद्धि और मुक्ति का नाम क्यों लेता है?

दूसरा

[**जो उसके निकट आ चुका है उसे धक्का देता है**] दूर हटो···क्यों जी तुम किस बात को भ्रम कह रहे हो! यहाँ···आश्रम के योगाभ्यास को···या···

सोमश्रवा

तुम जिस लिये यहाँ आये···मैं जिस लिये यहाँ आया···आर्य-जनपदों के हम सब कुमार और कुमारी यह तो तुम जानते हो सभी योग और मुक्ति के रहस्य के लिये यहाँ आये हैं।

दूसरा

हाँ···

सोमश्रवा

तो यह सब भ्रम नहीं है? जिसके लिये तुम यहाँ आये···जिसके

लिये मैं यहाँ आया···और जिसके लिये आर्यजनपदों से आनेवालें का ताँता अभी टूटना ही नहीं चाहता। [उपेक्षा से देखता है]

दूसरा

तो योग और प्रणव में तुम्हें आन्तरिक शान्ति नहीं मिलती ! अपनी ही गुप्त शक्तियों का बोध हो जाय तो···तुम···इस तरह तो तुम्हारी शक्ति और बढ़ रही है।

सोमश्रवा

धन्य है आप···[वृक्षों की ओर हाथ उठा कर] तो फिर पूजिये वृक्ष, जहाँ मिलें पत्थर गोल चन्दन, फूल, अक्षत और नैवेद्य चढ़ाकर आँख मूँद कर बैठ जाइये। लेकिन योग की सारी सिद्धि रहते हुए भी योगियों की यह जाति पीट कर इधर को खदेड़ दी गई।

दूसरा

तुम्हारे पूर्वजों ने इन्हें इधर खदेड़ दिया···इसका तुम्हें गर्व है !

सोमश्रवा

क्यों नहीं ? विजय का गर्व अरुण विजय का गर्व····

अरुण

असत्य है यह गर्व। यह तो हमारे पूर्व पुरुषों के लिये लज्जा की बात है। और इसी के लिये इधर के लोगों में उनके लिये एक ही शब्द है··हिंसक····। साधारण-सा घर बना लेने की क्षमता जिनमें नहीं थी, उन्होंने सुरम्य नगरों को फूँक कर स्वाहा कर दिया और अब वे भी वैसे ही नगर-निर्माण के लिये इन्हीं मूल निवासियों से शिक्षा ले रहे हैं। महर्षि नारायण ने सत्य ही तो कहा····विजय तो इन लोगों की हो रही है···योग और मुक्ति तुम्हारे लिये भ्रम हो, किन्तु गृहनिर्माण से लेकर वस्त्र और आभूषण तक···क्या नहीं लिया हमने इन लोगों से, और फिर नारायण, नर, नारद सभी ही उसी पराजित जाति के हैं

जिनसे हम दीक्षा ले रहे हैं···कम से कम इनके सम्मान के लिये और फिर यह विजेता और विजित का भाव अधिक दिन अब न टिकेगा··· अब तो इनके मिलने में एक नई जाति और संस्कृति पैदा हो रही है।

सोमश्रवा

बस दो घड़ी पहले मैं भी यही सोचता था···

अरुण

अच्छा तो अब तुम बात की बात में यह कोयल से कैसे बन गये कौवा !

सोमश्रवा

सुमित्र का इस तरह भाग जाना इस आश्रम के उद्देश्य को ही निष्फल कर देता है।

अरुण

ऐं ! तो क्या सुमित्र एकदम लोप हो गया···

सोमश्रवा

लोप हो गया लोप···

अरुण

पर मैं यह नहीं मानता···और तुम्हारा कहना वह चन्द्रभागा को प्रेम करने लगा था···इस दशा में तो वह और भी नहीं भाग सकता।

सोमश्रवा

यही तो तुम नहीं समझते···यहाँ प्रवृत्तियों का दमन जो हो रहा है। वह जानता था···यह आर्यजनपद नहीं है जहाँ राह चलते बाँह पकड़ लेना किसी भी कुमार-कुमारी के लिये पर्याप्त है। यहाँ तो वह उसे मिलती नहीं। बाँह पकड़ लेना यहाँ कहाँ सम्भव ? यहाँ तो आँखों में लालसा न आये···देख लेने पर कपोल लाल न हो उठें।

अरुण

पर तुम्हारी यह बात किसी भी तरह मेरे गले के नीचे उतर नहीं रही है। यों तो वह हम सब से बराबर अलग रहता था···· कुमारियों की ओर तो मैंने उसे कभी भी देखते नहीं देखा ···जब कभी किसी कुमारी का सामना पड़ा जैसे वह धरती में गड़ जाता था और तुम कहते हो····

सोमश्रवा

मैं जो जानता हूँ···मैंने जो अपनी आँखों देखा है और मैं कहता हूँ कि अब वह नहीं आयेगा···वह देखो लौट रहे हैं [**कुटी की ओर संकेत करता है**] देखो उपाध्याय देवदत्त लौट आये ···देखते हो उनके साथ वह····वह नहीं है ···गोकर्ण और उत्तानपाद···सुमित्र उड़ गया···· उड़ गया ···इसे कहते हैं योग की सिद्धि ··[**मृगचर्म अपने सिर से उतार कर यथास्थान बिछा देता है।**]

अरुण

सौम्य ! तुम्हें तो जैसे उसके लुप्त हो जाने का हर्ष है। कहीं तुम उसके प्रतिद्वन्दी तो नहीं हो····कहीं तुम भी तो उस चन्द्रभागा को ···

सोमश्रवा

उसके न रहने पर किसी न किसी की चाह तो उसे रहेगी ही····किसी न किसी को वह रिक्त स्थान तो भरना ही पड़ेगा··· मैं तुम या कोई अन्य····।

अरुण

तुम ···केवल तुम···तुम्हीं उस स्थान के उत्तराधिकारी होगे। तुम्हारी आँखों से आनन्द फूट रहा है, तुम्हारी आकृति लाल होती जा रहा है और ललाट का त्रिपुण्ड पसीने से भीग रहा है। लेकिन सुमित्र का स्थान चन्द्रभागा के लिये कदाचित तुम भर दो किन्तु यह आश्रम तो उसके बिना दरिद्र हो गया। तुम्हारी तरह कितने आये और चले

गये ···किन्तु सुमित्र की स्मृति इस आश्रम के निवासी कभी भुला न सकेंगे···सम्भव नहीं ·· जिधर से निकल पड़ता था यह धरती और आकाश धन्य हो उठते थे ।

सोमश्रवा

ओह ! तो यहाँ के नित नये बढ़ते देववाद में एक जगह सुमित्र को भी मिल सकेगा । कुछ दिनों बाद यहाँ उसकी उपासना होगी ।

अरुणा

यहाँ वालों के लिये तो वह उपास्य पहले ही हो उठा था । किसी के साथ कभी भी उसकी कटुता नहीं बढ़ी संघर्ष उसकी प्रकृति में था ही नहीं । किसके लिये उसका शील··· स्वभाव, विस्मय और आकर्षण का कारण नहीं बना । देववाद का विरोध अहंकारी सदैव करेगा, किन्तु वह जो विनम्र है, वह तो स्थिति के हर रूप की उपासना करेगा और जहाँ कहीं सुमित्र ऐसी स्थिति मिलेगी, निश्चय है देववाद वहाँ और भी रोचक और सम्मुन्नत होगा ।

सोमश्रवा

[**मुस्कराकर**] फिर वह इस तरह भाग क्यों गया ···उपास्य होने का ऐसा अवसर छोड़कर···

अरुणा

इसलिये नहीं कि उसे अपना विकार असह्य हो उठा···मैं तो इसका विश्वास नहीं कर सकता । सम्भव है उसके लिये ···तुम्हारा···मेरा या किसी अन्य दूसरे का विकार असह्य हो उठा हो ···जिसका प्रतिकार वह न कर सका हो ।

सोमश्रवा

और इसीलिए भाग गया हो···[**व्यंग्य के स्वर में**] तब तो उसका देवत्व स्वयं सिद्ध है और फिर मनोज के बाण लग जाने पर कौन देवता बन नहीं जाता !

अरुण

और उस बाण के लग जाने पर जो सुमित्र की तरह बच निकले उससे तो देवत्व भी निखर जाता है। [कुछ सोच कर] अजी तर्क रहने दो… उससे यह ईर्षा तुम क्यों करते हो ?

सोमश्रवा

जी मुझे और भी काम करने हैं…सुमित्र के साथ ईर्षा करने का अवकाश मुझे नहीं है। इस वर्ष वसन्तोत्सव में और कोई नहीं मिला उसे… वह श्रीमान के साथ रहा… आप उसके मित्र हैं… उसके मन की बात जानते होंगे आप…फिर उसके इस तरह भाग जाने का कारण भी आप जानते होंगे।

अरुण

केवल उसी एक दिन…किसी भी तरह का ऊधम हो-हल्ला वह सह नहीं पाता था…उसने मुझसे कहा उस दिन… तुम लोग उसे तंग कर रहे थे… अशोक…चम्पक और पारिजात पीस कर तुम लोगों ने लेप बनाया था उसी के लिये। इस आघात से बचा लेने के लिये वह मेरे पास आया उसकी आँखें बरस पड़ना चाहती थीं। साँस ऐसी चल रही थी जैसे किसी बाघ से बच कर भागा आ रहा हो। उस दिन मैं जब कभी सामने पड़ा जैसे भरत में सिमट जाता था।

सोमश्रवा

[कुटी की ओर संकेत कर] कैसी साँस रोक कर बात चल रही है। आचार्य नर की मेघ गंभीर वाणी कैसी धीमी हो गई है आज…

अरुण

[कुटी ओर देखते हुए] आज तो पता ही नहीं चलता कि आचार्य इतने समीप हैं। नीचे जनपद तक जिनकी स्वाभाविक वाणी पहुँचती थी…आज इतने निकट से… सुमित्र की चिन्ता में आज यह सारा आश्रम दबा जा रहा है।

सोमश्रवा

सुमित्र यहाँ नहीं था···तब भी आश्रम तो था....लेकिन आज तो यहाँ एक ही साथ कई बातें होने वाली हैं। प्रह्लाद के साथ नारद यहीं हैं। इस तरह के आश्रम-विधान और निवृत्ति-विधान के घोर निन्दक मरुत भी आनेवाले हैं। देखा तुमने इधर से जाते समय आज आचार्य की आकृति अधिक गंभीर अधिक चिन्ताग्रस्त रही। अरे! आ रहे हैं···इधर ही आ रहे हैं देख लो कहीं कोई चर्म उत्तर-दक्खिन तो नहीं पड़ा है? यहाँ तो मृगचर्म भी जब बिछेंगे तो पूर्व-पश्चिम··पग-पग पर नियम····विधान।

अरुण

सब ठीक है। [**देवदत्त के साथ नर का प्रवेश**]

नर

[**सब ओर देख कर**] बस ठीक है···कितने आसन हैं यह सब?

अरुण

कुल बीस

नर

[**देवदत्त की ओर देखकर**] काम चल जायेगा इतने से तो··· [**देवदत्त स्वीकृति संकेत करते हैं**] अच्छा अब तुम लोग जा सकते हो·· लेकिन देखो कुछ देर में हमारे कई सम्मानित अतिथि आश्रम का निरीक्षण करेंगे। [**छज्जों की ओर संकेत कर**] वहाँ भी सब आसन·· सारी वस्तुयें व्यवस्थित हों। भद्र! [**देवदत्त की ओर देखते हैं**]

देवदत्त

मैंने समझा दिया है सब ठीक होगा।

नर

सोमश्रवा! तुम रुकना तो···इधर आओ [**सोमश्रवा संकुचित-सा आगे बढ़ता है अरुण और दूसरे कुमार का प्रस्थान**] सुमित्र कहाँ गया तुम कुछ सोच सकते हो?

सोमश्रवा

नहीं···क्या पता मुझे [**कुटी की ओर हाथ उठाकर**] वहाँ प्रातःकाल अग्निहोत्र के समय कह रहा था—आश्रम के जड़ नियमों में वह न निभेगा।

देवदत्त

[**विस्मय के स्वर में**] किन्तु इन दिनों आश्रम के नियमों का पालन ठीक-ठीक केवल वही कर भी सका है। और भी कहा उसने कुछ···

सोमश्रवा

[**रुकते हुए**] नहीं···न···हीं···

देवदत्त

[**कड़े स्वर में**] तब यही क्यों नहीं कहते ! जैसे तुम्हारी जीभ कहीं अटक रही है। जाओ।

[**सोमश्रवा का प्रस्थान**]

नर

[**एक आसन पर बैठते हुए**] बैठ जाओ···आज हम लोग विषम परिस्थिति में पड़ गये हैं। उसके इस आचरण की सूचना उसके पिता, उसके जनपद को शीघ्र मिलनी चाहिये। यह निश्चित है कि वह यहाँ से निरस्त्र गया ?

देवदत्त

यहाँ उसने किसी भी प्रकार का शस्त्र संचालन तो सीखा ही नहीं। मृगया से वह एकदम काँप उठता था। अभी तीन दिन हुए कृष्ण मृग नितान्त समीप था। मैंने बार-बार कहा उसे बाण चलाने को···लेकिन जैसे उसकी उँगलियाँ प्रत्यञ्चा से चिपक गई थीं अन्त में मुझे मारना पड़ा उस मृग को। बिना मृगया के लक्ष्य-बेध कभी सम्भव नहीं और अभ्यास भी नहीं हो पाता।

नर

[**गंभीर स्वर में**] तब उसका वहाँ तक निरापद पहुँचना भी सम्भव नहीं। प्रायः सौ योजन ...वन, पर्वत और नदी का आर-पार ...निशस्त्र और निस्सम्बल। मुझे प्रवास में कितने दिन लगे इस बार...

देवदत्त

[**जैसे सोचकर**] दो मास में कुल सात दिन कम रहे।

नर

हूँ ...तो इस बीच उसकी प्रकृति में यह इतना का इतना भेद पैदा हो गया। उसकी प्रकृति...उसकी सारी बनावट बदलती जा रही है इसकी झलक समय रहते तुम्हें न मिल सकी।

देवदत्त

देखिये ... जहाँ तक सम्भव हो सका ...जहाँ तक आचरण और व्यवहार की बातें हैं ...उसकी ओर से मैं बराबर निश्चिन्त रहा। आश्रम के कुमार-कुमारियों के प्रति अपने कर्त्तव्य में मैं सजग रहा।

नर

[**एकटक उनकी आँखों में देखकर**] और तिस पर भी सुमित्र ने यह उदाहरण पैदा किया ! समझ रहे हो इसका परिणाम...हमारा यह सारा आयोजन [**चारों ओर हाथ घुमाकर**] एकदम [**उपेक्षा के स्वर में**] सुमित्र का यदि कुछ भी अनिष्ट हुआ, तो फिर उस दशा में यही नहीं कि हम अपना विश्वास खो बैठेंगे ... हमारे उद्देश्य में भी शंका की जायेगी। [**पश्चिम की ओर हाथ उठाकर**] उत्तर पांचाल से मद्र, गांधार, सुवास्तु तक के आर्यजनपद, जिनका विरोध हमसे धीरे-धीरे मिट चुका था, जो, अब विश्वास और सहानुभूति से हमारे भीतर मिल कर अपनी पहचान भूल रहे थे...फिर भभक उठेंगे ...और इस बार की उनकी हिंसक वृत्ति, सम्भव है गंगा पार कर सरयू और सोन-भद्र तक पहुँचकर साँस ले।

देवदत्त

तो इसमें आप मेरी असावधानी...

नर

निश्चित .. अकेली तुम्हारी अयोग्यता ने हम सब को अयोग्य कर दिया। [**तीव्र दृष्टि से देखकर**] और इसका परिणाम केवल हम लोगों पर....हमारे आश्रम तक ही नहीं रहेगा [**चारों ओर हाथ घुमाकर**] यह सुरम्य प्रकृति. यह स्वर्गीय शान्ति युगों के लिये मिट जायेगी ...भद्र !

देवदत्त

[**ग्लानि के स्वर में**] समझ रहा हूं....किन्तु ऊपर से देखने पर जो गंगा की धार की तरह निर्दोष लगे....उसके लिये...उसके भीतर क्या चल रहा है... कोई कैसे जाने ?

नर

गति कभी निर्विकार नहीं होती जो। जहाँ गति है ..साँस जहाँ चल रही है, आँखें जहाँ देखती हैं, कान जहाँ सुनते हैं, स्पर्श का जहाँ अनुभव है और इसी तरह ...इसी तरह ...इस तरह की कोई भी स्थिति निर्विकार नहीं हो सकती। इसीके लिये तो हमें सचेत रहना होता है। जिस सुमित्र ने कभी भी आश्रम के विषय में भूल नहीं की वही आज कह गया आश्रम के जड़ नियमों में वह निभ न सकेगा। उसकी ओर से कोई भी भूल न होना संकट की सूचना थी।

देवदत्त

पर महर्षि ने स्वयं उसे ढील दिया। [**हाथ उठाकर**] उस झुरमुट में प्रायः दोपहर से संध्या तक वह वीणा बजाता था....मैंने इस पर आपत्ति की तो मुझे....

नर

क्या हुआ ? [**गंभीर होकर कुछ सोचने लगते हैं**]

देवदत्त

महर्षि ने मुझसे कहा उसकी प्रकृति कठोर बन्धनों में दब जायेगी। उसके विकास के लिये, उसे उसकी प्रकृति पर ही छोड़ना होगा। और आज आपको अब मेरी असावधानी दिखाई दे रही है।

नर

[गम्भीर चिन्ता में] भद्र ! प्रश्न मेरा या तुम्हारा नहीं है। जिनका व्यवहार हमारे साथ केवल शस्त्र का था··· जिनके शस्त्रों को हम रोक न सके जैसे यहाँ एक ही साथ सैकड़ों सिंह आक्रमण करें और हम यह जानते रहें कि वे पशु हैं, किन्तु इससे हमारी रक्षा तो न होगी। शरीर और प्रकृति के उद्धत इन श्वेत जनसमूहों को संस्कृत और सभ्य बनाने के लिये ही महर्षि ने इन आश्रमों की व्यवस्था की। जिनमें उनके विधान अग्निहोत्र को सम्मिलित कर उन्होंने इनके मन में विश्वास पैदा किया। इनका विश्वास हिला नहीं कि ये रक्तपात और हिंसा लेकर चल पड़े।

देवदत्त

देख रहा हूँ··· सब देख रहा हूँ····क्या····क्या सम्भव है। इसका कोई भी प्रतिकार यदि हो सके तो मैं उसके लिये तत्पर भी हूँ। सुमित्र का यह आचरण मेरे लिये रहस्य है····तो··· मैं· ठीक होगा ·· मैं ही जाऊँ !

नर

कहाँ !

देवदत्त

उत्तर पाँचाल। आज के दिन पहुँच भी जाऊँगा और सब कुछ जान कर वे लोग····

नर

दुःस्साहस है भद्र ! तुम्हारी वहाँ जाने की कल्पना भी। जिस समय तुम यह सूचना दोगे सम्भव है तुम्हारी धज्जी····धज्जी उड़ जाय।

इस देश में आकर भी ···जहाँ भारती इतनी समृद्ध है····जहाँ भोजन पदार्थों का कोई भी अभाव नहीं ···जो लोग अभी कच्चा मांस और मद्य न छोड़ सके उनके आचरण में तुम्हें विवेक की गन्ध भी नहीं मिल सकती। महेन्द्रज और हरपत्र के ध्वसावशेष इन श्वेतांगों की हिंसा के अमिट प्रमाण रहेंगे। जिस समय इन्होंने इन महानगरियों में आग लगाई, सब ओर से घेर कर बच्चों और स्त्रियों को भी भागने का अवसर इन्होंने नहीं दिया। त्रस्त बालकों को उठा-उठा कर इन्होंने अग्नि की लपटों में झोंक दिया। इस बार जब मैंने इन दोनों नगरों को देखा ·· क्या कहूँ [**क्रोध से उनकी आकृति लाल हो उठती है, शरीर काँपने लगता है।**] महर्षि कहते हैं हमें इन्हें अपने शील और आचरण से वश में करना होगा जैसे हम हिंस्र जीवों को वश में करते हैं।

देवदत्त

मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मेरे लिये तो अब सुमित्र की खोज से बढ़ कर दूसरा कोई भी कार्य ···

नर

आज तुम्हारा यहाँ न रहना ·· इसे तो जानते हो। नारद, प्रह्लाद और हमारा सबसे बड़ा विरोधी संकृत भी आयेगा आज ही अपने दलबल के साथ।

देवदत्त

तो ···

नर

इस आश्रम का सारा भार तुम्हीं पर है। यहाँ जितने प्रश्न सम्भव हो सकते हैं जितनी जिज्ञासा लोगों की होगी।

देवदत्त

यह तो है···लेकिन सुमित्र भी छोड़ा नहीं जा सकता। कदा-

चित कहीं बीच ही में मिल जाय। और फिर आज तो यहाँ विजय-कीर्ति, व्योमकेश, विरोचन अपने तीन उपाध्याय तो यहाँ हैं।

नर

उपदेश नहीं भद्र! आपकी इस यात्रा की आज्ञा केवल महर्षि दे सकते हैं और वे जब स्वयं सुमित्र की खोज में निकल पड़े हैं।

देवदत्त

[**विस्मय से**] स्वयं महर्षि···?

नर

और उनके साथ नारद और प्रह्लाद भी···

देवदत्त

पर प्रह्लाद को तो अभी····

नर

क्या···? प्रह्लाद को यह नहीं जानना चाहिये अभी····

देवदत्त

सम्भव है वही यही हो·· सुमित्र के लौट आने पर यह कोई गम्भीर बात न होगी।

नर

बिल्कुल नहीं··· लेकिन न लौटने पर तो इससे गम्भीर कोई भी दूसरी बात न होगी। [**सोचने की मुद्रा में**] चन्द्रभागा को उठा कर वह ले जा रहा था··· किन्तु देख रहा था वह बराबर कभी दायें कभी बायें··· सीधे आगे की ओर वह कभी देखता नहीं था··· जैसे उसके मुँह की ओर वह देखना नहीं चाहता था··· इसीलिये आगे का रास्ता भी नहीं देख रहा था तो····

देवदत्त

[**कौतूहल से उनकी ओर देख कर**] जी···

नर

कहीं उसके इस तरह लुप्त हो जाने में चन्द्रभागा का तो कोई सम्बन्ध नहीं है ?

देवदत्त

वह कभी भी किसी कुमारी की ओर देखता नहीं था...

नर

[**मुस्कराकर**] यही तो कठिनाई है। जो कभी कुमारी की ओर नहीं देखता...इसलिये नहीं कि वह इन्द्रिय जयी है बल्कि इसलिये कि वह निर्बल है। वह जानता है...उसकी ओर देख लेने पर वह अपनी रक्षा न कर सकेगा। वह उस तरह खिंच जायेगा जिस तरह अग्नि शिखा पर पतंग खिंच जाता है।

देवदत्त

तो...किन्तु जो कुछ मैं समझ सका हूँ...

नर

मैं यह नहीं कहता कि आपकी समझ ठीक नहीं...मैं यह भी नहीं कहता कि सुमित्र के निकल भागने का कारण यही है। यहाँ तो सम्भावना की बात है...मैंने जब उससे कहा सीधे देखो...रास्ता देख कर चलो तो जैसे वह काँप उठा और ज्यों ही उसकी दृष्टि उसके मुख पर पड़ी वह अचेत हो गया...उसकी आकृति लाल हो गई और वह वहीं उसे उसी तरह लिये बैठ गया !

देवदत्त

तब इस दशा में आपका कहना ठीक है।

नर

मनुष्य चरित्र इतना गहन है भद्र ! कि हम सहसा कोई निर्णय नहीं दे सकते और अपनी बुद्धि से हम जो कुछ भी निर्णय देते हैं वह

बहुत कुछ सत्य भी नहीं होता। संगीत, काव्य और चित्र मनुष्य के उस तल में पैदा होते हैं····जिसके बारे में हम बहुत कम जानते हैं···हमारा वह तल स्वयं हमारे लिये गोपनीय है···इसीलिये हमारे मनोविकार बुद्धि की पकड़ में नहीं आ पाते।

देवदत्त

यह बात इन श्वेत यायावरों के लिये कही जा सकती है।

नर

[**मुस्कराकर**] जिनके भीतर जन्म लिया है सुमित्र और चन्द्रभागा ने···क्यों?

देवदत्त

बिल्कुल यही····इस तरह की सम्भावना हम अपने बच्चों से नहीं कर सकते।

नर

इसलिये कि हमने अपने बच्चों को सब ओर बाँध कर विवश कर दिया है। जन्म लेते ही हम उन्हें नीति, धर्म और आचरण का उपदेश जो देने लगते हैं। यह न करना वह न करना, बारबार की इस नकारात्मक विधि से उनके लिए जीवन नकारात्मक हो उठता है। कर्म की स्वाभाविक प्रेरणा उनकी मारी जाती है। [**उनकी आँखें चमक उठती हैं, सिर हिलाते हुए**]

देवदत्त

[**विस्मय की मुद्रा में**] तब तो प्रकृति के संस्कार और दमन की बात ही उठ जायेगी। मनुष्य और पशु का भेद क्या रहेगा?

नर

[**मुस्करा कर**] मनुष्य और पशु में भेद है ही कितना? पशु प्रकृति का नियम नहीं तोड़ सकता और मनुष्य उसे तोड़ता है, तिस पर भी प्रकृति एक दिन [**बाहें फैलाकर आँखें बन्द कर लेते हैं**] उसे

छोड़ती नहीं। उस दिन, उस एक क्षण मनुष्य और पशु में कितना भेद तुम देख पाते हो ?

देवदत्त

तो प्रवृत्तियों का निग्रह ...

नर

हाँ ...जिस तरह का निग्रह हमारे पूर्व पुरुषों ने, हमने किया उस निग्रह से तो जीवन की जड़ें सूख जाती हैं। हमारी सूख गईं। यदि हमने नैतिक महत्व को इतना आगे न बढ़ाया होता, शस्त्र को नृशंसता कह कर दूर न फेंक दिया होता तो आज हम पराजित न होते और न हमें इन संकट की समस्याओं से पार होना पड़ता। सुमित्र और चन्द्र-भागा की तरह के कुमार और कुमारियाँ हमारे घर भी होतीं जिनकी प्रकृति विकृत न होती।

देवदत्त

[**विस्मय से उनकी ओर देख कर**] तो सुमित्र की प्रकृति विकृत नहीं है ?

नर

[**मुस्कराकर**] बिल्कुल नहीं ...

देवदत्त

[**विस्मय में**] जी...मैं।

नर

वसन्त में, चैत्र के महीने में लतायें फूल उठती है। वृक्षों में फूल और नये पल्लव आ जाते हैं। पक्षी अधिक कलरव करने लगते हैं। भौंरे अपने राग से [**चारों ओर हाथ घुमाकर**] दिगन्त को सिहरा देते हैं ...

देवदत्त

[**जैसे कुछ न समझ कर**] तो...

नर

वही जिसके लिए सुमित्र और चन्द्रभागा को तुम अपराधी कहोगे भद्र ! लेकिन यह अपराध तो प्रकृति का है। प्रकृति में वसन्त का आना निर्दोष है या उसमें भी कोई दोष तुम देखते हो ?

देवदत्त

प्रकृति नित्य अपने परिवर्तन में आगे बढ़ रही है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में उसका रूप भिन्न-भिन्न होता है। उसमें दोष कैसा ?

नर

[**उत्साह के स्वर में**] और मनुष्य का जीवन ? उसमें प्रकृति का यह धर्म है कि नहीं ? हमारी इस प्रकृति में यदि सदैव ग्रीष्म रहे···बस उसी तरह से जलता हुआ सूर्य, जलता हुआ आकाश और जलती हुई धरती···जब इस गोमती का पानी भी अदहन की तरह खौलता रहे··· जब इन पेड़ों की पत्तियाँ झुलस कर ऐंठ जायँ···और फिर वह दशा कभी न बदले।

देवदत्त

तब तो प्रलय हो जायेगी।

नर

क्यों ?

देवदत्त

इसलिये कि अब तक प्रकृति का जो स्वभाव रहा है वह अकस्मात् बदल जायेगा। सृष्टि का क्रम बिगड़ जायेगा और····

नर

और प्रकृति में एकरूपता पैदा हो जायेगी जो मृत्यु का स्वभाव है जीवन के स्वभाव में परिवर्तन, प्रकृति की ही तरह नित्य का परिवर्तन है। परिवर्तन में वसन्त भी है और ग्रीष्म भी। हम लोगों ने अपने जीवन में बस ग्रीष्म को ही जगह दी थी। वसन्त के आने के सारे मार्ग

हमने रोक दिये। हमारी जन शक्ति तो घटती ही गई। जीवन का स्रोत भी हमारा सूख गया। हम जीवित मृत हैं। हम साँस भी लेते हैं तो योग और वेदान्त की····हमारे हृदय में जो कुछ भी धड़कन बच रही है वह हमारे हृदय की नहीं जिसमें हमारे इस भौतिक शरीर का जल चक्कर काटता है वरन् उन विचारों और विश्वासों की····जिन्हें हमने युगों से अपनी प्रकृति बदल देने के लिए अपना लिया है।

देवदत्त

तो फिर मुझे यह मानना है कि हमारी पराजय में हमारी योग और तत्व की साधना थी?

नर

निस्सन्देह····हमने अपनी प्रकृति बदल कर [**चारों ओर हाथ घुमाते हुए**] इस व्यापक प्रकृति से अपना नाता तोड़ लिया। हम अब इसके योग्य न रहे। इसलिये यह अब हमें रखना नहीं चाहती। यह तो बस उन्हीं को रखती है जो इसके अनुकूल पड़ते हैं। अतीत के विशालकाय जीव इस पृथ्वी से मिट गये [**मुस्करा कर**] वे बहुत बड़े हो गये थे। हम भी जब बहुत बड़े हो गये इस प्रकृति ने हमें मिटाना आरम्भ किया। इन यायावरों को यह प्रकृति रखना चाहेगी, ये इसके अनुकूल हैं। ये किसी भूमि से बँधकर रहना नहीं चाहते····एक जगह से दूसरी जगह पशुओं की तरह ये स्थान बदलते रहते हैं। निरन्तर के इस परिवर्तन में ये प्रकृति के निकट हैं····प्रकृति चली जा रही है यह भी चले जा रहे हैं।

देवदत्त

[**गंभीर कठोर स्वर में**] और प्रकृति के साथ जो ये दौड़ रहे हैं आज यहाँ, कल वहाँ, परसों वहाँ····और····और ये अर्धनग्न, हिंसक, बर्बर जिधर से निकल जाते हैं सुन्दर नगरों को, अमराइयों और वाटिकाओं

को जलाते फूँकते ध्वस्त करते आगे बढ़ते हैं····जिस धरती पर इनके पैर पड़े बस वहाँ प्रलय आ पहुँचा।

नर

निस्सन्देह। लेकिन इस तरह उत्तेजित क्यों हो रहे हो? प्रकृति केवल निर्माण ही नहीं करती प्रलय भी करती है। प्रकृति के लिए प्रलय और निर्माण में कोई भेद नहीं है। उसके हर निर्माण में प्रलय है और हर प्रलय में निर्माण भी है। और फिर उत्तेजना, घृणा से कोई बात अब नहीं बनती। ये यायावर जो तुम्हारे देश में आ गये। शस्त्र से जिनसे तुम पराजित हुए उनसे चाहे तुम अब जितना घृणा करो····मैं भी तो घृणा करता रहा हूँ पर महर्षि की बात मुझे ठीक लगती है।

देवदत्त

क्या····

नर

उनके विचार इस बारे में तुम जानते हो।

देवदत्त

जानता तो हूँ पर समझता नहीं। जिन्होंने हमारे नगरों को जलाया; हमारे बालकों का, स्त्रियों का वध किया; जिन्हें देखते ही शरीर में रक्त खौल उठता है उनके साथ सहयोग····यह तो····

नर

तो तुम सहयोग न कर भी उन्हें अब यहाँ से खदेड़ न सकोगे। वे यहीं रहेंगे तुम उनके साथ घृणा करते रहो। उनसे दूर-दूर रहो निरन्तर उनके साथ तुम्हारे युद्ध चलते रहें और जिस तरह वे अब तक जीतते आये हैं उसी तरह बढ़ते-बढ़ते किसी दिन तुम्हें समुद्र में ठेल दें।

देवदत्त

मैं तो उस स्थिति की अधिक कामना करूँगा लेकिन यह दशा तो ...

नर

हूँ तो यह शब्द का आदर्श प्रकृति का धर्म नहीं बदलेगा। जम्बूद्वीप में इन यायावरों को जम्बूदीप के धर्म, संस्कृति, योग और ज्ञान के भीतर दीक्षित कर इनके भीतर से इनकी पहचान, इनकी विजातीयता को मिटा देना होगा। इन्हें शैव, वैष्णव और शाक्त बनाना होगा। आकाश के चमकते ग्रह पिण्डों, मेघ और वायु की उपासना इनकी मिटानी होगी और इस समय हमारे योग और आध्यात्मिक रहस्यों का जो इन पर प्रभाव है, जिसके कारण इनके कुमार-कुमारी हमारे यहाँ दीक्षा के लिए आ रहे हैं उससे इन बातों का हो जाना असम्भव नहीं है।

देवदत्त

लेकिन इस तरह हमारी पहचान भी तो मिट जायेगी। रक्त सम्मिश्रण से हमारी जातीय विशेषतायें मिटेंगी पहले और....

नर

लेकिन इस रक्त सम्मिश्रण को तुम रोक भी कहाँ पाये? तुम्हारी स्त्रियों के दल के दल का इन्होंने हरण किया और करते ही रहेंगे। उनसे जो सन्तान पैदा होगी वही इस भूखण्ड में सहस्रों वर्ष बाद इस आर्य-अनार्य द्वन्द को मिटा कर यहाँ शासन करेगी।

देवदत्त

// वही वर्णसंकर सन्तान....

नर

मानव रक्त सर्वत्र प्रकृति के एक ही गुण-पदार्थ के अनुसार बनता है इसलिए उसका द्रव्य सब कहीं एक ही है। जातीय विशेषताओं, धर्म

और संस्कृति के तत्वों की रक्षा के लिए रक्त मिश्रण बुरा होता है किन्तु जब इनकी रक्षा सम्भव नहीं रहती, जब पशुबल से बुद्धिबल को झुकना पड़ता है उस समय फिर बुद्धि का सब से बड़ा काम होता है पशु के आगे पहले चारा और बाद में उसके गले में रस्सी...

[**देवदत्त हँसने लगता है**] देख लो जो लोग इसके लिए तैयार नहीं हैं वे महर्षि को कितने कटु-वचन, ध्वस्त प्रज्ञ यहाँ तक कि ब्रह्मद्रोही तक कह रहे हैं।

देवदत्त

और दूसरी ओर हम लोग....

नर

जाने दो....हमारे लिए तो गुरु रूप में भी वे ईश्वर अंश है। संघर्ष मिटा कर जो वे इस यायावर जाति के साथ समन्वय पर तुले हैं, इसके लिए जिस तरह उन्होंने इस यायावर भाषा का संस्कार कर उसमें अपने ज्ञान, विज्ञान, कला और संस्कृति का प्रवेश अपने इधर के बीसों आश्रमों में आरम्भ कर दिया है और जिस निष्ठा के साथ ये यायावर पालित मृग की तरह अपना सिर पृथ्वी पर रख रहे हैं उससे यह तै है कि किसी दिन मन, बुद्धि और शरीर से ये हमारे भीतर ऐसे मिल जायेंगे कि फिर इनकी कोई भी भिन्नता शेष न रहेगी। अपने साथ जो कुछ भी लेकर ये आये थे वह तो समाप्त हो गया अब तो इन्हें हमारा आश्रित होकर रहना पड़ेगा। इनके शरीर को न जीत कर भी हम इनकी बुद्धि को जीत लेंगे।

देवदत्त

[**गंभीर आकृति में जैसे कुछ सोचता हुआ**] तब फिर हिरण्यकशिपु का वध इसीलिए हुआ।

नर

इसीलिए। वह इस संगम को नहीं मान रहा था। दो धाराएँ

मिलने पर एक हो जाती है···जब उनका मिलना नहीं रुक सका तब फिर एक धार भी कैसे रुकती ? मैंने इधर दस वर्षों के बाद जब प्रहलाद को आज देखा [**मुस्करा कर**] उसकी आँखें ऊपर नहीं उठ रही थीं····जैसे वह अपने ही बोझ से दबा जा रहा था···नारद की अमृत बरसाने वाली वीणा भी उसे उल्लास नहीं दे पाती थी···आकाश के पक्षी धरती पर उतर आये, वन के हरिण धरती सिर टेकने लगे जिस नाद में, उसीमें उसकी दशा जैसे अधजली मछली की थी।

देवदत्त

तो फिर उसे भी पश्चात्ताप है ?

नर

बहुत अधिक। नारद की कल्याणी छाया यदि उसे न मिलती तो····

देवदत्त

[**चौंककर**] तो···

नर

तो अब तक उसे उन्माद हो जाता।

देवदत्त

परम वैष्णव प्रह्लाद को उन्माद ?

नर

शैवध्वज हिरण्यकशिपु विधान को सनातन मानता था। कोई भी बाहरी प्रभाव, किसी भी प्रकार का मिश्रण वह सनातन धर्म में स्वीकार नहीं करता था। यहाँ तो वह इस हिमालय की तरह अडिग था।

देवदत्त

और जब शेष की कुण्डली हिली वह रसातल में चला गया।

नर

[**गंभीर स्वर में**] और उसके लिए शेष की कुण्डली बन गया उसी का पुत्र प्रहल्लाद।

देवदत्त

यह भी सृष्टि का रहस्य है। शैव ने वैष्णव पैदा किया...या कदाचित ...

नर

कदाचित नहीं यही सृष्टि का रहस्य है। शैव से वैष्णव और फिर वैष्णव से शैव यही चक्र चलता रहा है। रक्त और धर्म की शुद्धता सदैव महान है। हिरण्यकशिपु इसी महानता के लिए मारा गया।

देवदत्त

और उसे मारने वाले अब महान बन रहे हैं।

नर

यही तो विस्मय है। मैं अभी तक इस कार्य को श्लाघ्य नहीं समझता किन्तु महर्षि कहते हैं धर्म की गति का अवरोधक जलका अवरोधक ग्राह है जिसे मारना हिंसा नहीं।

देवदत्त

इसमें सन्देह नहीं। इन आश्रमों में और बाहर भी ये यायावर जो हमारे भीतर मिलाये जा रहे हैं, उसके रहते यह न हो पाता।

नर

किन्तु तब होता क्या? निरन्तर का युद्ध और रक्तपात। यही न।

देवदत्त

हाँ....

नर

किन्तु इतने से हमारी समस्या नहीं बनती। जिनका आना हम नहीं रोक सके उन्हें अब अपने घर में जगह देनी पड़ेगी। वे शत्रु बन

कर यहाँ अवश्य रहते इसलिए उन्हें मित्र बना कर अपने में पचा लेना ही हमारा आज का धर्म है। इसीलिए महर्षि ने इस वैष्णव विधान का प्रवर्तन किया। द्रोह और घृणा पर अधिकार केवल वैष्णव कर सकता है। प्रकृति के अनुरूप रहना ···कभी भी प्रकृति से अलग न होना जड़ प्रकृति को जड़ होकर पकड़े रहना शैवागम है।

देवदत्त

[**मुस्करा कर**] और वैष्णव····

नर

वैष्णव प्रकृति को अपने अनुरूप बनाता है। प्रकृति के द्रोह, संघर्ष और घृणा को वह अजेय नहीं मानता। उसके निकट जो ही आ जाय उसका मित्र होता है। शत्रु का भाव वह नहीं जानता।

देवदत्त

कहने को यह सब बड़ी बातें हैं किन्तु आज ही महर्षि ने उस बाघ को जो मार डाला···यह हिंसा नही है ···अपनी प्रकृति और स्वभाव के अनुसार तो वह भी शैव था।

नर

[**हँसते हुए**] साधु ! साधु सौम्य ! वह भी शैव था क्यों ?

देवदत्त

वह प्रकृति के अनुरूप था या नहीं !

नर

था····

देवदत्त

[**मुस्करा कर**] तब फिर शैव था। चन्द्रभागा को बचाने के लिए वह जो मार डाला गया, इसमें तो वैष्णव वृत्ति निर्बल पड़ी है।

नर

अच्छा तो क्या वह चन्द्रभागा को ले गया होता और इस आश्रम के अधिष्ठाता चुपचाप देखते रहते ?

देवदत्त

तब तो यहाँ वैष्णव भी शैव है। इस समन्वय और समाधान के बाद यह वैष्णव विधान स्वयं मिट जायेगा और फिर शैवध्वज हिरण्यकशिपु से व्यक्ति पैदा होंगे। जब-जब विदेशियों का सम्पर्क इस देश के साथ होगा कुछ काल के लिए वैष्णव विधान चल पड़ेगा किन्तु शैवध्वज हिरण्यकशिपु सनातन है और सनातन रहेगा।

नर

ठीक कह रहे हो। दस वर्ष बीत चले ··महर्षि के साथ मुझे किन्तु मुझे मिला क्या ? मैं जब घूम कर पीछे की ओर देखता हूँ मुझे लगता है जैसे मेरा यह सारा जीवन प्रयोग में ही बीत रहा है···मंगल लोक में उड़ कर पहुँच जाने जैसी उत्तेजना में मेरे दिन बीतते रहे हैं।

[**सोचने की मुद्रा में**] किन्तु यह सब होते हुए भी···इस सृष्टि में पूर्ण सन्तोष न होते हुए भी···शैव पराजय और निराशा के बाद वैष्णव होता ही है।

देवदत्त

सोच कर····समझ कर आचार्य ! हमारे इस आचरण का किसी दिन भविष्य निर्णय देगा।

नर

हमने सोचने का काम इस समय केवल नारद और नारायण को दे दिया है। और तुम इतने अशान्त क्यों हो रहे हो ? हमें अनुगमन करना है। हमारे पूर्व पुरुष अनुगमन करना नहीं चाहते थे इसीलिए तब कोई अग्रगामी भी न हो सका। नारद और नारायण जो

यह समन्वय का विधान चला रहे हैं इससे इस पवित्र भूमि पर हिंसा और रक्तपात रुक जायेगा। [**पूर्व की ओर देख कर**] ठहरो ···वह ··· वह [**पूर्व की ओर हाथ उठाकर देवदत्त भी उधर ही देखते हैं**]

देवदत्त

विजय कीर्ति के साथ वह स्त्री कौन है ? क्या हुआ ? वह तो कुछ अधिक उत्तेजित देख पड़ती हैं। एं····एं ··मैं जाऊँ ? [**नर की ओर देखने लगते हैं**]

नर

नहीं····वह प्रह्लाद की रानी मेनका ···इधर ही आयेंगी। [**सम्हलते हुए**] आ भी रही हैं इधर ही। उन लोगों के साथ वह सोमश्रवा क्यों चला आ रहा है। यहाँ के संस्कार से वह अभी अछूता ही है। उसकी जातीय बर्बरता अभी उसे नहीं छोड़ सकी। और उधर पूर्व की ओर वे कुमार-कुमारी भी क्यों जा रहे हैं ? अब ···अब जाना है तुम्हें उधर भद्र !···कदाचित् आज अभी और भी घटनाएँ आ रही हैं।

[**देवदत्त उद्वेग में नर की ओर देख कर प्रस्थान करते हैं। नर जैसे तन कर खड़े होते हैं। एकटक निर्निमेष आँखों से किरणें फूट रही हैं। धीरे-धीरे उनकी भौंह तन जाती है और ललाट पर रेखायें पड़ जाती हैं। नाक और कपोल के भाग आरक्त हो उठते हैं। उनकी आकृति से किसी निकट संघर्ष की चेष्टा दिखाई पड़ती है।**]

[**नेपथ्य में**]

तो आप ही उपाध्याय देवदत्त हैं ?

हाँ भद्रे····

और इस आश्रम के व्यवस्थापक भी आप ही हैं ?

मैं ही····हूँ····

हूँ····और जब आप व्यवस्था का विचार करते हैं उस समय कदाचित आपको नींद आ जाती है।

मुझे ?

जी हाँ···मैं अभी-अभी आपकी व्यवस्था देखे आ रही हूँ और यदि मैं कहूँ···

तो स्नातकों की दिनचर्या में आपको कोई त्रुटि मिली ?

त्रुटि ? ओह ! इधर अशोक कुञ्ज में मैंने जो देखा उसके बाद तो मुझे और कुछ देखने का साहस नहीं हुआ !

यही तो मैं चाहता हूँ····आपने क्या देखा ? मैं भी तो सुन लूँ। आपने किसी कुमार कुमारी को रोगी, अशक्त, संयमहीन या अभद्र देखा ? तेजहीन आँखें, आभा हीन ललाट या सूखे ओठ कहीं आपको दिखलाई पड़े ?

कह रही हूँ और कुछ नहीं····कुछ नहीं देखा मैंने। मेरी आँखों ने और कुछ देखना चाहा ही नहीं। मैं तो सुनती थी यहाँ उस धर्म उस विधान····

[नर हाथ हिलाकर संकेत करते हैं] का निर्माण हो रहा है जिसमें संघर्ष और द्वन्द मिट कर फिर शान्ति और सुख का समय आयेगा और यहाँ····

नर

भद्रे ! यहाँ की व्यवस्था की नैतिकता का प्रश्न मेरे साथ है। आप उत्तेजित न हों। आपके समाधान के लिए मैं यहाँ हूँ।

अच्छी बात····किन्तु आपकी क्षमता से मुझे भयभीत होना पड़ेगा आपकी बुद्धि के साथ मैं चल न पाऊँगी और आप मेरे मन की ओर देखेंगे नहीं····फिर समाधान की बात····**[विजयकीर्ति के साथ प्रह्लाद की पत्नी मेनका का प्रवेश। नर आगे बढ़ कर आसन की ओर हाथ उठा कर बैठने का संकेत करते हैं। मेनका लाल कौशेय वस्त्र पहने है।**

उसकी साँस वेग से चल रही है। काली लम्बी आँखें जैसे सन्देह से चारों ओर दौड़ आती हैं]

नर

[**मेनका की ओर संकेत दृष्टि से देखते हैं फिर विजयकीर्ति की ओर घूमकर**] क्या बात है सौम्य ?

मेनका

नहीं····नहीं आप कुछ न कहें विजयकीर्ति जी···मैं अभी कहती हूँ अभी····बस क्षण भर मैं अपने मन को कुछ···[**नर की चेष्टा से विस्मय और कौतूहल प्रकट होता है**] तो अब कहूँ····

नर

आप यहाँ बैठ कर प्रकृतिस्थ हो लें····

मेनका

[**उनकी ओर देख कर तुरत आँख फेर लेती है**] वहाँ उस अशोक कुञ्ज में वह कुमारी कौन है ? मैं जब वहाँ पहुँची जैसे वह मर चुकी थी [**हाथों की उंगलियाँ मिला कर कन्धे पर रखती हुई**] वीणा पकड़े उसी के सहारे आधी लेटी हुई उसकी आँखों से आँसू जो निकले थे अभी कपोलों पर सूखे भी नहीं थे। उसके सिर पर मेरा हाथ लगा नहीं कि वह गनगना कर बैठ रही। उसकी नीली भूरी आँखें मेरी आँखों में गड़सी गई हैं। [**आँखें बन्द कर लेती है**]

नर

[**विजयकीर्ति की ओर अर्थ-भरी दृष्टि डाल कर**] क्यों चन्द्रभागा ··· वही माद्रिक जनपद की कुमारी जो अपनी माता की अकेली सन्तान है ?

मेनका

तो वह इतनी दूर रोने के लिए आई है ·

नर

होगा ...उससे पूछ लेंगे क्या बात है। प्रकृति कभी-कभी रोने के लिए भी विवश करती है।

मेनका

किन्तु आचार्य ! आप बुद्धि की भाषा से पूछेंगे मन की भाषा कुछ दूसरी होती है। और जब उसने मुझे नहीं बतलाया... [**विजय-कीर्ति की ओर हाथ उठाकर**] इन्हें अलग कर मैं घड़ी भर उसकी उँगलियों के साथ, उसकी आँखें, नाक, कान, केश और कण्ठ के साथ खेलती रही हूँ और तब भी वह इस गोमती से भी अधिक गहरी बना रहा तो फिर...

नर

आप उसके लिए अपरिचित थीं ...

मेनका

नारी... नारी से अपरिचित रहती है यह तो आप नया विधान दे रहे हैं मैं तो अब तक यही जानती थी कि नारी पुरुष से परिचित नहीं होती। आश्रम में और सब बदल जाता है केवल प्रकृति नहीं बदलती। मैं समझती थी यहाँ की कुमारियाँ कुछ दूसरी होंगी उनकी आँखों से आँसू और लज्जा निकल गई होगी।

नर

कदाचित् आप....

मेनका

जी हाँ कहिए....

नर

आज कुछ अवाञ्छित घटनाएँ यहाँ हो रही हैं।

मेनका

मैं आपसे जान सकती हूँ वह कुमारी क्यों दुखी है ? मैं तो उससे इस तरह द्रवित हूँ ·· उसका रोम-रोम जैसे किसी मर्मान्तक पीड़ा से हिल रहा था ···कहा तो कुछ नहीं मैं पूछती पूछती हार गई ···किन्तु उसकी एक-एक साँस···उसके क्षण-क्षण में लाल-पीले कपोल, उसकी आँखों का खुलना और बन्द होना [**गनगना कर**] आह ! मैं कैसे कहूँ ।

[**चुप होकर किसी गहरी चिन्ता में पड़ जाती है**]

नर

देखिए ज्ञात होगा ?

मेनका

[**उनकी ओर देखकर**] आपकी भावभंगी····आपकी मुद्रा कह रही है कि आप कुछ न कुछ जानते अवश्य हैं ।

नर

मैं अनुमान कर रहा हूँ····

मेनका

अनुमान क्या कह रहे हैं आप ?

नर

कह रहा हूँ मेरा अनुमान है ।

मेनका

मैं कह रही हूँ आप जानते हैं । आपकी आँखें कह रही हैं आप जानते हैं । आपकी एक-एक साँस कह रही है आप जानते हैं ।

[**कातर दृष्टि से उनकी ओर देखती है**]

नर

आप विश्वास करें मैं अभी सब कुछ जान जाऊँगा ।

मेनका

देखिए मैं और सब सह लूँगी किन्तु उसकी कातर भयभीत दृष्टि से मैं हिल उठती हूँ [**उसकी आँखें डबडबा आती हैं स्वर भारी हो उठता है**]

नर

हँ-हँ क्या कर रही हैं ? इतनी अधीर आप हो उठें ! राजमहिषी के योग्य तो यह नहीं है। आपका धैर्य हमारे बल का कारण होना चाहिए और जब आप स्वयं...

मेनका

राजमहिषी होकर भी नारी नारी है आचार्य ! मन की वही निबलता, बुद्धि का वही अभाव ...क्या यह सम्भव नहीं आप उसे यहीं बुला लें ?

नर

जैसा कि आप कहती हैं वह रो रही थी तो फिर उसे अभी कुछ समय चाहिए जिसमें वह संयत हो सके और [**विजयकीर्ति की ओर घूम कर**] देखो तो भद्र ! देवदत्त कहीं असंयत न हो उठें अभी-अभी उन्हें कटूक्तियाँ जो सुननी पड़ी हैं।

मेनका

क्या कहते हैं आप मैंने उनके प्रति कटूक्तियाँ की है ?

नर

आपका उद्देश्य तो वैसा नहीं था किन्तु उनके लिए तो वे कटूक्तियाँ थी हीं ...उन्हें तो लगा होगा जैसे उन पर कोई [**पर्वत की ओर हाथ उठाकर**] शिखर टूट पड़ा।

मेनका

यदि ऐसा है तो मैं उनसे क्षमा लूँगी। मन पर मेरा अधिकार न रह सका इसका मुझे खेद है।

[विजयकीर्ति का प्रस्थान]

नर

मन पर अधिकार कुछ बिरले कर सकते हैं और वे नारायण होते हैं, नारद होते हैं, राजर्षि प्रह्लाद होते हैं।

मेनका

[भारी स्वर में] और वे क्या नर नहीं होते ?

नर

नहीं अभी मैं बहुत पीछे हूँ।

मेनका

किन्तु यहाँ की क्या बात ? यमुना से लेकर स्वर्णरेखा तक सब कहीं नर का यशगान हो रहा है। कहते हैं नारायण बुद्धि हैं, किन्तु शरीर तो नर हैं और बिना शरीर के बुद्धि की स्थिति भी तो····

नर

नहीं····नहीं····कृपा करें आत्म-स्तुति सुनने का स्वभाव मेरा नहीं है मैं तो इससे लज्जित और खिन्न हो उठता हूँ।

मेनका

तो आप कहेंगे नहीं ?

नर

क्या····

मेनका

क्या नाम है उस कुमारी का ? चन्द्रभागा····अभी आपने कहा

था और वह अपनी माता की अकेली सन्तान है और वह यहाँ आई····उसकी, माता ने उसे भेज दिया किस लिए····

नर

यहाँ उधर के जितने कुमार-कुमारी हैं सब के यहाँ आने का एक ही उद्देश्य है ?

मेनका

तब····

नर

रहस्य की सिद्धि···योग, कला, ज्योतिष, साधारण बुद्धि के परे जो कुछ है उसे पाने के लिए ये श्वेत यायावर अपने कुमार और कुमारी यहाँ भेज रहे हैं। चन्द्रभागा इसकी निश्चित प्रमाण है। हमारी विद्या का जो प्रभाव उधर पड़ा है, उसका जितना मोह है उसी में तो पड़कर उसकी माँ ने अपनी इकलौती कन्या को यहाँ भेजा ?

मेनका

इस तरह वे जो अब तक जीतते आये हैं अपने आप पराजित हो रहे हैं अब। इस प्रकार आप लोगों का मनोरथ सिद्ध होगा। अच्छा तो····उसके रोने का कारण आप जो कुछ जानते हों····

नर

उत्तर पांचाल का एक कुमार यहाँ रहता था···सुमित्र···

मेनका

[**व्यग्र होकर**] तो क्या हुआ वह····

नर

आज प्रातःकाल अग्निहोत्र तक तो वह यहाँ था, किन्तु तब से उसकी कोई सूचना यहाँ किसी को नहीं है।

मेनका

वह कहीं चला गया ?

नर

हाँ···और किसी से कुछ न कह कर। वीणा बजाने में वह जैसे यक्षजन्मा था। पिछली बार महर्षि नारद के साथ उसे थोड़े दिन यहाँ रहने का अवसर मिला था केवल उनके संसर्ग से उसे अनायास इस विद्या में सफलता मिल गई। **[सोचने लगते हैं]**

मेनका

अच्छा तब यह चन्द्रभागा भी उसके साथ अभ्यास करती रही यही न ?

नर

नहीं···उसने कभी वीणा का अभ्यास नहीं किया जहाँ तक मैं उसके सम्बन्ध में जान सका हूँ वह कभी किसी कुमारी की ओर देखता भी नहीं था···सदैव जैसे बच कर निकल जाना चाहता था।

मेनका

[विस्मय की मुद्रा में] तब····

नर

तब मैं निश्चय कुछ नहीं कह सकता। आज एक दुर्घटना होते-होते बची। उपाध्याय देवदत्त के साथ यहाँ के कुमार कुमारी नीचे जनपदों की ओर गए थे। आज प्रतिपदा के कारण अनध्याय है। अग्निहोत्र पर सुमित्र और सामश्रवा दो स्नातक रह गये थे वह चन्द्रभागा उधर नदी के किनारे थी···जिस समय चीता उसकी ओर दबे पाँव बढ़ा आ रहा था ठीक समय पर महर्षि ने पहुँच कर दूर से ही बाण और भल्ल से उसे मार गिराया अन्यथा आज तो··

मेनका

[**भय की-सी मुद्रा में**] ओह ! उसे चीता ले गया होता····

नर

बस क्षण भर की और देर थी। वहाँ वह भय से मूर्छित हो गई। उसे उठाकर [**कुटी की ओर संकेत कर**] वह ले जा रहा था मैं आ गया और मैंने देखा, वह कभी दायें, कभी बायें देख रहा था किन्तु सीधे देखना वह नहीं चाहता था। उसके मुँह की ओर देखना उसके लिए सम्भव नहीं था। इससे जो निष्कर्ष ···जो अनुमान निकाला जाय।

मेनका

हूँ····तो उसने वही किया जो कभी उसके आचार्य ने किया था।

[**नीचे धरती की ओर देखने लगती है**]

नर

[**सम्हलते हुए**] अच्छा हो आप संयत रहें। मैं इन दिनों जीवन की जिस विधि में हूँ उसमें आपको अधिक आशा और अधिक विश्वास रखना चाहिए ? बीती बातों की स्मृति···

मेनका

[**उसी प्रकार अधोमुख**] मैं कोई उपालम्भ नहीं दे रही हूँ ···ठीक वही बात यहाँ भी घटित हुई। मुझसे भयभीत होकर आप स्वर्णरेखा के तीर से भागे थे और सुमित्र चन्द्रभागा से भयभीत होकर यहाँ से भाग निकला। [**उनकी आँखों में देखकर**] यहाँ वह आपका योग्य शिष्य है।

नर

नहीं इस प्रसंग की कोई बात नहीं ···नहीं तो ···

मेनका

नहीं तो आप यहाँ से भी भाग जायेंगे···यही न !

[**नर चुप रहते हैं**] आप से अब तक जो कुछ भी हो चुका है··· वह कर्म है और कर्म का बन्धन उसके फल के भोग से ही छूटता भी है। आप अभी अपने साथी से यही न कह रहे थे। मुझसे भी आप निस्संकोच मुक्त हृदय से मिले। आपकी आँखों में संकोच का लेश भी नहीं था। आपके आत्म-विजय को देख कर मैं विस्मित हो गई। किसी दिन सुमित्र भी आत्मजयी होकर लौटेगा और चन्द्रभागा के सामने उसी तरह उन्नत मस्तक खड़ा होगा जैसे मेरे सामने आप आज प्रातः-काल खड़े थे। समाज में आप सदैव विजयी रहेंगे लेकिन जहाँ केवल मैं आपके निकट रहूँगी आप जीत नहीं सकते। सुमित्र भी चन्द्रभागा के निकट जब कभी जायेगा उसका अहंकार और आत्म-विजय मिट जायेगा।

नर

हम दोनों की मर्यादा आप बिगाड़ रही हैं राजमहिषी ? उस स्थिति में मैं जैसा रहता उससे कहीं बड़ा आज हूँ और उस स्थिति में जैसी आप रहतीं उससे कहीं बड़ी आज हैं।

मेनका

प्रकृति को कुचल कर ···मार कर हम दोनों बड़े हुए हैं···यह यदि ठीक है तो···और फिर आपके बड़े होने में मुझे क्यों शंका हो··· किन्तु मैं बड़ी हो गई हूँ इसमें मुझे तो शंका है। आज प्रातःकाल हम लोग जब इस पार आये ···विजयकीर्ति के साथ आपको देख कर मैं गनगना उठी ···आपकी मुस्कराहट में मैं जली जा रही थी। एक युग पहले आपको देख कर उस स्वर्णरेखा के किनारे मेरी जो दशा होती थी·· सिर से पैर तक जैसे मैं काँप कर गनगना उठती थी····मेरी वाणी

का जैसे अवरोध हो उठता था, मेरी साँस जैसी वेगवती होती थी वही स्थिति तो मेरी आज भी हो गई थी। यहाँ इस गोमती के किनारे भी।

नर

आप यह सब कह कैसे पा रही हैं ?

मेनका

चन्द्रभागा को देखकर....उसने मेरा मर्म हिला दिया नहीं तो मैं भी कम से कम आत्म-विजय का स्वाँग तो अवश्य करती।

नर

मेरी और अपनी दृष्टि से न देख कर इसे आप लोक की दृष्टि से देखें। प्रकृति को कुचल कर मार कर कभी-कभी लोक के लिए उपयोगी बनना पड़ता है। हम दोनों की उपयोगिता इस रूप में बढ़ गई है। क्या आप इसे भी न स्वीकार करेंगी ?

मेनका

आपकी सम्भवतः बढ़ गई है किन्तु मेरी भी बढ़ी है इसे तो मैं....

नर

राजर्षि प्रह्लाद को आपने इन गुरुकुलों की ओर प्रेरित कर गौ, वस्त्र और भूमि दिलाई है। हमारे आश्रम आपके राज्य के प्रधान अंग बन गये हैं और सब से पहले आपको इन्हीं की चिन्ता है। इन दो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के समन्वय में आप मूल शक्ति बन रही हैं।

मेनका

[जैसे थक कर] नहीं...नहीं यह कुछ नहीं है। इन बड़ी बातों को तो मैं कभी सोच भी नहीं पाई ...**[अकस्मात् एक चबूतरे के आसन पर बैठकर दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लेती है]**

नर

[**आगे बढ़ते हुए**] हाँ ·· हाँ · आप भी तो ··

मेनका

[**वहीं खड़ी होकर**] जी नहीं मैं आपकी सहायता नहीं चाहती। मैंने इन आश्रमों के लिए कुछ नहीं किया है····मैंने जो कुछ किया है केवल आपके लिए। इनसे यदि आपका सम्बन्ध न होता तो मुझे निश्चय है यह कुछ न हुआ होता। गो, वस्त्र, भूमि जब कभी दिए जाने का प्रस्ताव मैंने किया मेरे सामने भुर्जपत्र या मृगचर्मधारी किसी तरुण ऋषि की मूर्ति सदैव जैसे साकार हो उठती था····ठीक वही मूर्ति जिसे मैंने तब स्वर्णरेखा के तीर पर देखा था वही···वही उन्नत मस्तक, ललाट, कण्ठ और वक्षस्थल ···पत्थर छेद देने वाली वही आँखें ··· वही····वही।

नर

[**हँसते हुए**] बस····और इसीलिए हमारे ये गुरुकुल इतने श्री सम्पन्न हुए आपके दान के बल पर मेरे यश का विस्तार हुआ··· आपने मुझे बड़ा बनाया उस रूप में भी और इस रूप में भी··

मेनका

आप मुझे उत्तेजित न करें मैं यह सब रोक कर आपको छोटा भी बना दूँ यदि आप···

नर

जो धार निकल जाती है। फिर लौटती नहीं। यहाँ तो आप विवश हैं। व्यक्ति की विवशता पर ही लोक फूलता फलता है।

मेनका

[**गंभीर मुद्रा में**] अच्छा तो यह हमारी विवशता है और हमारी इस विवशता में हमारे इस लोक का कल्याण है ? यही न ? [**दूर पर्वत-**

श्रेणियों की ओर देखने लगती है। नर उसकी ओर देखकर मुस्कराते हैं उसकी दृष्टि भी नर पर पड़ती है और वह भी मुस्करा पड़ती है।] आप ठीक कहते हैं। मैं भूली थी। यह विवशता मेरी बराबर चलती रहेगी तो फिर मेरा यह दान भी चलता रहेगा।

नर

[**एक ओर देख कर**] वह चन्द्रभागा आ रही है। मेरे सामने वह सम्भव है भयभीत हो तब तक मैं कुटी में जा रहा हूँ।

[**मेनका उठ कर उधर देखने लगती है। नर का प्रस्थान। चन्द्रभागा का प्रवेश। मेनका आगे बढ़ कर उसे बाहों में पकड़ लेती है। चन्द्रभागा गनगना जाती है। उसकी आकृति ऐसी हो उठती है जैसे वह अभी रो पड़ना चाहती है**]

मेनका

मैं तुम्हारी बड़ी बहिन हूँ···इस प्रकार नहीं···धैर्य न छोड़ो··मैं उसे [**पर्वत की ओर हाथ उठा कर**] पर्वत के उस पार से पकड़ लाऊँगी और तुम्हारे साथ इस प्रकार कस कर बाँध दूँगी वह फिर न भाग पाये। [**उसके सिर पर हाथ रख कर**] देखें वह कैसे तुम्हें छोड़ कर जा पाता है। जो मेरे साथ हो गया तुम्हारे साथ नहीं होने पावेगा।

चन्द्रभागा

[**विस्मय में**] क्या ?

मेनका

[**हँसती हुई**] कुछ नहीं मैं भी जब तुम्हारी अवस्था की थी मेरे साथ भी यही बात हुई थी [**चन्द्रभागा एकटक उसकी ओर देखने लगती है मेनका उसके सिर पर हाथ फेरती रहती है**] ठीक अब तुम मेरा विश्वास करोगी। क्या तुम्हें यह सम्भव नहीं लगता···तुम्हारी आँखें इतनी निराश न रहें।

चन्द्रभागा

वह मनुष्य नहीं है....

मेनका

प्रकृति किसी-किसी को मनुष्य न रहने के लिए विवश करती है। किन्तु मैं उसे मनुष्य बनाऊँगी। [**उसे अपनी छाती से लगाती है।**]

पर्दा गिरता है

तीसरा अंक

[**स्थान वही। वृक्षों के नीचे चबूतरों पर मृग-चर्म उसी तरह पड़े हैं। कुटी के भीतर से कुछ उत्तेजित ध्वनि-सी सुनाई पड़ती है। कुञ्जों की ओर से नर, विजयकीर्ति और देवदत्त वेग से कुटी की ओर जाते हुए दिखाई पड़ते हैं। चन्द्रभागा निश्चेष्ट एक चबूतरे के आसन पर बैठी है। सोमश्रवा का प्रवेश**]

सोमश्रवा

[**चन्द्रभागा के निकट पहुँचकर**] वह नहीं मिला। महर्षि, नारद और प्रह्लाद लौट आये। सुमित्र अब यहाँ न लौटेगा। कहीं कोई चीता या बाघ उठा ले जायेगा। धनुष, बाण, भल्ल सब कुछ यहीं छोड़ गया। वीणा भी नहीं ले गया कि संकट के समय उसे भी बजाने लगता। [**मुस्करा कर**] सुन नहीं रही हो ?

चन्द्रभागा

इस सूचना की मुझे····

सोमश्रवा

यही कि उसकी आशा तुम्हें छोड़ देनी चाहिए।

चन्द्रभागा

जाओ भद्र ! उपदेश के लिए तुम्हें निमन्त्रित करूँगी तब आना।

सोमश्रवा

उसके स्थान पर किसी को तो····अवश्य ही तुम····

चन्द्रभागा

[**उसकी ओर रोष से देख कर**] विश्वास करो सौम्य ! उस स्थान

पर तुम्हारा निर्वाचन न होगा। जीवित रहने पर या गर जाने पर भी वह स्थान उसी एक का है। दूसरे के आसन पर न बैठ कर अपने लिए कोई स्थान कोई आसन बना लो…

सोमश्रवा

हूँ…[**व्यंग्य से सिर हिलाता है**]

चन्द्रभागा

जा रही हूँ मैं आचार्य से अभी कहूँगी तुम….

[**सोमश्रवा मुस्करा कर निकल जाता है। मेनका का प्रवेश। कुटी के भीतर उत्तेजित ध्वनि रह-रह कर सुनाई पड़ती है। चन्द्रभागा उधर की ओर खड़ी होकर देखने लगती है**]

मेनका

[**उसके कन्धे पर हाथ रख कर**] चलो हम लोग उधर चलें….

चन्द्रभागा

[**कुटी की ओर संकेत कर**] वहाँ क्या हो रहा है? अरे…[**विस्मय और उद्वेग से मेनका की ओर देखती है**]

मेनका

वहाँ…धर्म के आकार गढ़े जा रहे हैं। अपने धर्म की चिन्ता मनुष्य नहीं करता….किन्तु दूसरों के लिए वह बराबर धर्म बनाता चलता है।

चन्द्रभागा

किन्तु वहाँ तो जैसे युद्ध की-सी उत्तेजना सुनाई पड़ती है। अच्छा यह कौन है 'तपस्वी के लिए शस्त्र ग्रहण अनाचार है' यह वाणी तो किसी नये व्यक्ति की है।

मेनका

हाँ जी···यही मेरे पतिदेव राजर्षि प्रह्लाद हैं।

चन्द्रभागा

कैसी मेघ गंभीर वाणी है।

मेनका

वाणी ही नहीं पुरुषार्थ भी है। दया, दाक्षिण्य, शील भी अनुपम है, किन्तु तपोवन में राजसत्ता का यह दम्भ कुछ ठीक नहीं लगता।

[कुटी के भीतर से उत्तेजित प्रह्लाद निकलते हैं। रत्नजटित स्वर्ण-मुकुट सिर पर तिरछा हो रहा है। क्रोध के कारण भौंह, आँखें, ओठ और नाक में प्रस्फुरण की गति है। उभरे कन्धे, छाती, लम्बी भुजाएँ, कन्धे में धनुष, पीठ पर तरकस, दायें हाथ में लम्बा भल्ल] तेजस्वी आकृति क्रोध के कारण लाल हो रही है। उनके पीछे महर्षि नारायण, नर और विजय-कीर्ति का प्रवेश। मेनका और चन्द्रभागा का प्रस्थान।

प्रह्लाद

[कुटी के आगे चबूतरे से नीचे उतर कर पेड़ों की ओर बढ़ते हुए] महर्षि! तपोवन और गुरुकुल की सनातन विधि में शस्त्र नहीं है। ब्रह्मचारियों के निवास, उपाध्याय और आचार्य के निवास तो शस्त्रागार हो ही रहे हैं आपके निवास पर भी शस्त्रों को देख कर····

नारायण

मैंने आप से कहा तो ब्रह्मचारियों की शिक्षा में शस्त्र शिक्षा मेरे कुलों में प्रधान है। हम सब इसका अभ्यास करते हैं।

प्रह्लाद

वह तो मैं देख रहा हूँ **[चारों ओर हाथ घुमा कर]** लक्ष्य-वेध के स्थान सब ओर मैं देख रहा हूँ। यह सुरम्य शान्त प्रकृति जैसे आखेट भूमि हो रही है।

नारायण

इस समय तो ऐसा ही है ।

प्रह्लाद

किन्तु जो तपोनिष्ठ है, योग और प्राणायाम जिसका विधान है, आत्मदर्शन में जो विश्वरूप ब्रह्म का अनुभव करता है वह शस्त्र नहीं ग्रहण कर सकता । उसका द्रोह कहीं भी, किसी से भी होता ही नहीं ।

नारायण

[वृक्षों के नीचे आसनों की ओर संकेत कर] आप आसन ग्रहण करें इस विषय के जो मेरे विचार हैं मैं....

प्रह्लाद

[एक आसन पर बैठ कर] आपके विचार चाहे जो हों महर्षि ! सनातन विचार क्या है ? पूर्व पुरुषों के विचार क्या हैं ? आपको इसे भी तो देखना होगा । **[प्रह्लाद के सामने आसन पर नारायण बैठते हैं । नर और विजयकीर्ति कुछ हट कर एक ही आसन पर बैठ जाते हैं ।]**

नारायण

यहाँ मैं इस रूप में भी....इस जटा, इस बाघम्बर के साथ भी व्यक्ति धर्म नहीं, लोक धर्म का निर्वाह कर रहा हूँ और राजर्षि ! जब तक लोक धर्म का निर्वाह ठीक नहीं होता व्यक्ति धर्म लुप्त हो जाता है ।

प्रह्लाद

तो क्या मैं यह समझूँ कि महर्षि नारायण के व्यक्ति धर्म का लोप हो चुका है ? यह जो मेरे सामने दिव्य ऋषि...मूर्ति है वह सत्य नहीं...आज तक महर्षि नारायण की तपस्या की जो कथायें चलती रही हैं उनमें केवल भ्रम, मिथ्या और वञ्चना रही है ?

नर

[**जिनकी आकृति रोष से लाल हो रही है**] सावधान ! अपने मन, वचन और कर्म को वश में रख कर ...

प्रह्लाद

[**नर की ओर घूम कर**] अच्छा तो फिर यह ऋषियों का आश्रम नहीं वीरों का अखाड़ा है....

नारायण

[**नर को संकेत से रोक कर**] ऋषि वीर होते ही हैं राजर्षि ! कायर कभी ऋषि नहीं होते। संसार के प्रलोभनों से निकल जाने की पद्धति केवल वीरों की है। कायर उनमें लिपटे रहने ही के लिए पैदा होते हैं।

प्रह्लाद

शस्त्रों से लिपटे रहना भी तो उसी प्रकार का है।

नारायण

कहीं है....कहीं नहीं भी है। आततायी होने के लिए शस्त्र-ग्रहण आत्म-हनन है किन्तु आततायी को रोकने के लिए शस्त्र न ग्रहण करना भी आत्म-हनन है ! और मैं आप से यह भी कह दूँ कि धर्म व्यक्ति का नहीं प्रकृति का होता है। धर्म का निर्माण प्रकृति करती है और उसी प्रकृति धर्म के अनुसरण से ही व्यक्ति धार्मिक होता है।

प्रह्लाद

[**विस्मय में**] प्रकृति ?...यह धरती, इस पर पर्वत, नदी, वन, वृक्ष ? आकाश और आकाश के ग्रह ? अग्नि, वरुण, मरुत ? यही न ? और इन्हीं से धर्म का निर्माण होता है ? इसे मान लेने पर तो बस धर्म का बेड़ा पार है।

नारायण

मनुष्य के आने के बहुत पहले ही ये इस पृथ्वी पर आ चुके थे।

इन्होंने मनुष्य को यहाँ बुलाया और धर्म का पहला पाठ भी मनुष्य को इन्हीं से मिला। जिस भूखण्ड का जो गुण और स्वभाव है उसी के अनुरूप उस भूखण्ड का धर्म होता है। हमारा धर्म सनातन है, इसीलिए कि हमारे इस भूखण्ड का गुण और स्वभाव सनातन है। इस भूखण्ड में जो आयेंगे ...जिनका जन्म यहाँ होगा उनका अन्त में वही धर्म होगा जो हमारा है।

प्रह्लाद

क्यों....ये जो आये हैं....

नारायण

इन्हें आये अभी कितने दिन हुए ? इनके मूल निवास की प्रकृति का जो गुण और स्वभाव था उसी के अनुसार इनका धर्म भी था मांस, मद्य, बहुपत्नीत्व यह सब अब इनका मिट रहा है। ये धीरे-धीरे हमारी विधि में दीक्षित होकर अपना सब कुछ भूल रहे हैं किसी दिन हमारे विभेद में खड़े होने के योग्य हमारी प्रकृति इन्हें नहीं रहने देगी।

प्रह्लाद

शस्त्र इनका बल रहा है। और अब आप भी आत्मलाभ के स्थान पर शस्त्र की प्रधानता दे रहे हैं...इस प्रकार इन्हें दीक्षित करना तो दूर रहा आप इन्हीं से दीक्षित हो रहे हैं।

नारायण

[**मुस्करा कर**] कभी-कभी शिष्य की अभिरुचि का विचार गुरु को भी करना ही पड़ता है अन्यथा शिष्य का विश्वास उसे नहीं मिलता। और देखिए शिक्षा के मूल में भी वही प्रकृति तत्व है जो धर्म के मूल में है। वयस्क कुमारों के भीतर प्रकृति, पौरुष, ओज और उत्साह बन कर ही आती है। अधिक से अधिक अंग सचालन, धरती पर, जल में, पेड़ और पर्वत पर वह किसी भी किशोर से कराना चाहती है, और जो

उस अवस्था में यह सब नहीं करता वह पूर्णरूप में विकसित भी नहीं हो पाता।

प्रह्लाद

हूँ ···तब इस आश्रम और गुरुकुल की विडम्बना क्यों ·· यह सब तो जनपदों में भी हो पाता। [कुछ सोचकर] तो क्या मैं यह अनुमान करूँ कि अवसर आने पर आपके स्नातक, उपाध्याय, आचार्य और आप स्वयं भी युद्ध कर सकेंगे ?

नारायण

निश्चित···हम अपनी रक्षा स्वयं करते हैं···अपनी रक्षा के लिए हम राजाश्रय में जाना ठीक नहीं समझते। आत्म-रक्षा प्रकृति का प्रथम धर्म है, इसके अभाव में व्यक्ति और उन व्यक्तियों का समाज-कायर है।

प्रह्लाद

तो आप अपनी रक्षा कर सकेंगे।

नारायण

कह तो दिया कर सकेंगे···करेंगे।

प्रह्लाद

यदि युद्ध करना पड़े····

नारायण

उसका निर्णय हमारे शस्त्रों पर होगा।

प्रह्लाद

मैं फिर कहता हूँ वह अनाचार होगा। युद्ध कर आप तपभ्रष्ट होंगे।

नारायण

हम युद्ध करेंगे···उसमें घृणा न होगी। क्रोध न होगा। अहंकार से जो उद्धत हो उठेंगे उनके अहंकार के शमन के लिए। हत्या करना हमारा धर्म नहीं है। जिन्होंने हमें शस्त्र से पराजित किया हम उनके शस्त्र गुरु भी होंगे तभी अपने इस भूखण्ड और अपनी प्रकृति का ऋण हम दे पायेंगे।

प्रह्लाद

सन्देह है····किन्तु क्या आप में कोई इसकी परीक्षा के लिए भी तत्पर होगा ?

[**विजयकीर्ति और नर दोनों सचेष्ट हो उठते हैं**]

नारायण

[**मुस्करा कर**] आप के शब्द स्पष्ट नहीं हैं।

प्रह्लाद

आप युद्ध कर सकेंगे···इसमें मुझे विश्वास नहीं····किन्तु किसी भी रूप में मैं अपने साथ यह भ्रम····यह सन्देह लेकर जाना नहीं चाहता। आप यदि चाहें मैं आपके साथ युद्ध करना चाहता हूँ।

नारायण

राजन्! आप युद्ध में इन्द्र को भी विमुख कर चुके हैं। मेरे साथ आपका युद्ध आपके यश में कलंक होगा ?

प्रह्लाद

अच्छा····तो आप समझते हैं आप मुझे पराजित कर देंगे। [**आसन से खड़े होकर कन्धे से धनुष लेकर पैर से दबाकर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं। उनकी आकृति लाल हो उठती है। भवें तन जाती है। साँस तीव्र हो उठती है नारायण मुस्कराते हैं। नर और विजयकीर्ति की आकृति से रोष और विस्मय प्रकट होता है**]

नारायण

आपको पराजित करने की लालसा मुझे नहीं है। मैं तो यही चाहूँगा आप यह प्रसंग बन्द करें। राजर्षि को प्रतिद्वन्दियों की कमी न होगी।

प्रह्लाद

देखिये, ब्रह्मर्षि जब राजर्षि का कर्म करता है उस समय प्रकृति उसे ही प्रतिद्वन्दी बना देती है किन्तु यदि आप समझते हों···मेरे साथ युद्ध करने की क्षमता आप में नहीं है उस स्थिति में तो यह प्रसंग बन्द ही है।

विजयकीर्ति

महर्षि ! मुझे आज्ञा हो इनका समाधान कर दूँ। [**क्रोध में इनका स्वर विकृत हो जाता है**]

नारायण

तुम तो अभी पराजित हो गये। तुम्हें यह क्रोध क्यों आ गया। राजर्षि के साथ यदि युद्ध ही करना पड़े तो भी क्रोध का अवसर यहाँ कहाँ है। कर्म के मूल में आसक्ति नहीं उसका शुद्ध रूप तो अनासक्त है।

विजयकीर्ति

यह भी अपने कर्म में अनासक्त नहीं हैं। इनके शब्दों में विष की लहर है।

प्रह्लाद

जी हाँ···आप उसे रोक दें···यदि आपसे यह सम्भव हो···

नारायण

ऐसा नहीं राजर्षि !···आप उत्तेजित न हों। उत्तेजना में मन और बुद्धि की शान्ति हिल जाती है।

प्रह्लाद

अभी नहीं····बस इस युद्ध के बाद उपदेश देंगे आप और तब मैं सुनूँगा भी इस समय····कर्म की यह बेला कर्म चाहती है उपदेश की बेला भी आयेगी।

नारायण

तो आप न मानेंगे।

प्रह्लाद

नहीं····उठिये अपने शस्त्र लेकर····

नारायण

नर !···

नर

मुझे आदेश भर मिले···

नारायण

मैं आदेश दे रहा हूँ····किन्तु कुछ हटकर राजर्षि !

प्रह्लाद

जहाँ शस्त्र रहते हैं वहीं युद्ध भी होते हैं····किन्तु आपका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है····कुटी के दक्षिण दह के उस पार····

नारायण

और शस्त्र···

प्रह्लाद

बस केवल धनुष बाण····

नारायण

[अपना धनुष और तरकश नर को देकर] तुम्हें युद्ध के समय क्रोध तो न होगा !

नर

[मुस्करा कर] विश्वास करें आप····

प्रह्लाद

और यदि क्रोध भी आ जाय तब तो ···क्रोध भी तो प्रकृति का धर्म है।

नारायण

प्रकृति जिसे पराजित करना चाहता है उसे क्रोध देती है ···मैं नहीं चाहता नर क्रोध के कारण पराजित हो···

प्रह्लाद

उदार चरित हैं आप ···फिर आप इनके विजय की ही कामना क्यों करते हैं ? आप मेरी विजय भी···

नारायण

राजर्षि ! विजय व्यक्ति की नहीं विधान की होती है और विधान वही होता है जो प्रकृति में सत्य हो।

प्रह्लाद

हूँ····तो···

नारायण

कुछ नहीं यदि मेरा विधान ठीक होगा तब तो आज वीर श्रेष्ठ राजर्षि प्रह्लाद, ऋषि नर के हाथों पराजित होंगे।

प्रह्लाद

और यदि नहीं····

नारायण

बस उसी दशा में हम लोगों का शस्त्रग्रहण अनाचार होगा। किन्तु

आप इस तरह अधीर क्यों हो रहे हैं? आपकी साँस अभी बढ़ गई है। हृदय की गति से यह अभेद्य कवच हिल रहा है।

प्रह्लाद

[**नर की ओर देख कर**] तो फिर चलो आचार्य! कभी युद्ध में विधान बनता था··· फिर तपोवनों में विधान बनने लगा और अब फिर युद्ध में विधान बनेगा।

नारायण

इसी प्रकार प्रकृति का चक्र चलता रहता है। प्रकृति में तप और युद्ध साथ-साथ लगे हैं। प्रकृति में जो केवल युद्ध देखते हैं हिंसक हैं और जो केवल तप देखते हैं कायर हैं। हमने प्रकृति में केवल तप देखा इसीलिए ये यायावर आज हमारे प्रभु बन रहे हैं। पूर्वजों की इस भूल का फल हमने भोग लिया।

प्रह्लाद

[**गम्भीर मुद्रा में**] कदाचित् आप का कथन सत्य हो किन्तु बिना कर्म का विचार निष्फल है और अब धनुष चढ़ा लेने पर···

नर

नहीं··· नहीं [**पैर से दाब कर धनुष चढ़ाते हुए**] यह देखिये मेरा धनुष भी चढ़ गया। बिना कर्म का विचार निष्फल है। और अब जब धनुष चढ़ गये कर्म होना ही है।

प्रह्लाद

साधु सौम्य! महर्षि के इस विधान की परीक्षा इसी आश्रम में हो यह शुभ घड़ी है।

नारायण

प्रकृति का विधान राजर्षि! मेरा विधान वही है जो प्रकृति का है। संघर्ष और तप में ही यह प्रकृति पूर्ण है और प्रकृति के पूर्ण होने में

ही हम भी पूर्ण हैं। द्रोह और बैर नहीं। दो नदियों के मिलने में पहले संघर्ष होता है और फिर एक धार हो जाती है।

नर

राजर्षि के साथ मेरे इस युद्ध के नियम क्या होंगे ?

प्रह्लाद

जो किसी भी प्रतिद्वन्दी के साथ होते हैं। ऐसे बाण जो मर्मभेद कर बाहर निकल पड़ें···और वह आकाश देखता हुआ कटे वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े।

नारायण

[**मुस्करा कर**] उसकी प्रत्यञ्चा काट देना उसे निरस्त्र कर देना भी उसके अहंकार के मर्म को बेध देना है। धनुर्धर का मर्म उसकी प्रत्यञ्चा में होता है।

प्रह्लाद

जी नहीं····मैं आघात करूँगा और आघात का स्वागत भी करूँगा। युद्ध में युद्ध-धर्म का हो नियम है और वह यही है कि दया का लेश न रहे।

नर

तो फिर चलें मैं आपकी प्रत्यञ्चा काटूँगा और आप मेरा मर्म···

प्रह्लाद

क्या ···तो मैं उस ऋषि की हत्या करूँगा जो मुझ पर दया करेगा। मुझे आप इतने नीचे गिरा रहे हैं ?

नर

जी नहीं उसका अवसर आपको न मिलेगा। [**छाती पर हाथ रख कर**] यह मर्म अभेद्य है।

प्रह्लाद

यह तो तब पता चलेगा जब मेरे बाण उस ओर चलेंगे। बस अब यह तर्क यहीं रहे। [**धनुष घुमा कर**] आइये हम इसका निर्णय कर लें।

[प्रह्लाद और नर दोनों ही का प्रस्थान। प्रह्लाद के कन्धे से कन्धा मिला कर नर उसके साथ बाईं ओर घूम कर ओझल हो जाते हैं।]

नारायण

[विजयकीर्ति की ओर देख कर] सौम्य ! क्या चिन्ता है ?

विजयकीर्ति

आचार्य इन पर दया करेंगे। उनके बाणों का लक्ष्य इनका मर्म न होगा। किन्तु ये उत्तेजित हैं··कहीं ऐसा न हो····

नारायण

कि नर के शरीर को इनके बाण बेध दें !

विजय कीर्ति

मुझे शंका हो रही है····

नारायण

उसका मर्म अभेद्य है अभी-अभी जो वह कह गया। प्रह्लाद वीर हैं, विख्यात धनुर्धर भी हैं किन्तु तब भी इनकी उत्तेजना इन्हें पराजित करेगी। उत्तेजना में मनुष्य की आन्तरिक शान्ति मिट जाती है और जो भीतर से शान्त नहीं है वह विजय के समीप नहीं जा पाता। [नेपथ्य में धनुष की टंकार। लगातार बाण चलने की ध्वनि सुनाई पड़ती है। वृक्षों की ओर से कुमार-कुमारी कुटी की ओर बढ़ते हैं। देवदत्त का प्रवेश]

देवदत्त

महर्षि ! यह क्या हो रहा है ?

नारायण

युद्ध वत्स ! राजर्षि प्रह्लाद और आचार्य नर का युद्ध।

देवदत्त

आप यहीं हैं और····इसका अवसर क्यों आ पड़ा !

नारायण

मैं नहीं रोक सका····मैं यहीं था और सुमित्र को पंख लग गये। यह सृष्टि कितनी रहस्यपूर्ण है···इसके सारे रहस्यों पर मनुष्य अधिकार नहीं कर सकता।

देवदत्त

किन्तु···

नारायण

शान्त····यह समय तर्क···वितर्क का नहीं है। भयभीत पक्षी वृक्षों से भाग कर आकाश छा रहे हैं। वन पशु इस युद्ध की प्रलय में पर्वतों की ओर भागे जा रहे हैं। ऐं····[**हाथ उठाकर**] उधर वृक्षों में आग-सी लग रही है। आग्नेयास्त्र भी चल पड़े। [**झनझन करती हुई तीखी ध्वनि**] राजर्षि की प्रत्यञ्चा कट गई।

विजयकीर्ति

तब तो [**आनन्द से गद्गद् स्वर में**] यह आचार्य की विजय·· हमारे इस विधान की विजय [**महर्षि के पैरों पर सिर रख देते हैं**]

नारायण

[**उनके सिर को उठाते हुए**] उठो · उठो ···यह विजय तो प्रकृति के उस विधान की विजय है जिसमें आत्म-रक्षा का अधिकार सब को है। आनन्द मनाने में हम यह न भूल जायें कि जिसकी यह प्रकृति है वही मंगल रूप है।

विजयकीर्ति

[**वहीं खड़े होकर**] किन्तु अभी तो बाणों की ध्वनि आ रही है। [**उनकी आकृति धूमिल हो उठती है**]

नारायण

राजर्षि ने दूसरी प्रत्यञ्चा चढ़ा ली।

[**गम्भीर हो उठते हैं। वीणा की ध्वनि सुनाई पड़ती है।**] मैं तो यहाँ से हिलूँगा नहीं। मुझे तो इस युद्ध के परिणाम से भी निरपेक्ष रहना पड़ेगा। किन्तु यह जो नारद की वीणा अमृत बरसा रही है···· चराचर के सुख, सन्तोष और शान्ति की यह व्यापक लहरी इस प्रकृति को आर्द्र कर देगी।

विजयकीर्ति

[**देवदत्त से**] चलो भद्र! मृत्यु और अमरत्व जहाँ एक दूसरे का अभिवादन कर रहे हैं चल कर हम देखें···त्याग और संघर्ष, प्रकाश और अन्धकार, प्रेम और द्रोह की यह सन्धिबेला यह सन्धि स्थली हमारी सनातन सिद्धि हो।

नारायण

अवश्य····अवश्य····

[**विजयकीर्ति और देवदत्त का प्रस्थान। नारायण वहीं खड़े होकर आकाश की ओर देखने लगते हैं।**] युद्ध रुक गया। पक्षी वृक्षों पर उतरने लगे यह प्रकृति जो जली जा रही थी आनन्द में फूल उठी।।

[**मेनका और चन्द्रभागा का प्रवेश। मेनका भावावेश को दबाने की चेष्टा कर रही है। उसका शरीर रह रह कर गनगना उठता है। उसकी आकृति प्रति क्षण पीली, लाल और श्वेत हो रही है। चन्द्रभागा नीचे धरती की ओर देखती हुई चल रही है। उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं अब गिरी तब गिरी किन्तु सम्हल जाती है।**]

मेनका

[**संयत होने के प्रयत्न में**] क्या फूल उठी महर्षि!

नारायण

[**मेनका की ओर घूमकर**] आप राजमहिषी! आइये यह मृग चर्म आज धन्य हो।

[**आसन पर बैठने का संकेत कर**] यही प्रकृति ···क्षण भर हो पहले जहाँ प्रलय मुँह बाये चली आ रही थी क्या से क्या हो गया।

मेनका

आपकी महिमा महर्षि! आपके दिव्य प्रभाव में यह प्रकृति अपनी सृष्टि में आगे बढ़ती रहेगी। प्रलय तो वहाँ हो जहाँ आप न हों।

नारायण

मेरी नहीं ···यह तो कीर्ति देवर्षि नारद की होगी। जहाँ नारद हैं द्रोह और बैर नहीं चल सकता।

मेनका

नारद आत्मा हैं····आप बुद्धि हैं और नर शरीर हैं ···यह जो मैं अब तक सुनती आई आज प्रत्यक्ष देखा ···इन्हीं आँखों से ··युद्ध आरम्भ होने के पहले ही हम दोनों उधर ही निकल गई थीं···

नारायण

[**उत्सुक होकर**] अच्छा ·· तब ···

मेनका

तब ·· क्या? हम लोग जब युद्ध का वर्णन करने लगेगीं तब तो युद्ध भी करने लगेगीं।

नारायण

[**हँसते हुए चन्द्रभागा की ओर संकेत कर**] यह तो अवश्य मूर्छित हो गई होगी।

मेनका

[**चन्द्रभागा के कन्धे पर हाथ रख कर**] मैं इसे पकड़ कर वृक्ष की आड़ में खड़ी हो गई। मैंने सब कुछ देखा ···कान की झिल्लो

फट जाना चाहती थी··· आँखें रह-रह कर अन्धी हो जाती थीं। राजर्षि को जैसा आज देखा कभी नहीं देखा था और आचार्य को भी····

नारायण

तो क्या आपने नर को भी पहले देखा था?

मेनका

[जैसे समझने की चेष्टा में] नहीं····नहीं असम्भव है युद्ध की कोई भी बात कह न सकूँगी मैं···पुरुष का परिचय केवल युद्ध में मिल सकता है और स्त्री को यह अवसर कभी नहीं मिलता और यही कारण है कि वह पुरुष से कभी परिचित नहीं होती।

नारायण

राजमहिषी!

मेनका

जी···

नारायण

आप मुझसे सत्य तो कहेंगी··· [गम्भीर हो उठते हैं]

मेनका

जी नहीं··· नारी अपने रहस्य में ही जीती है। [चन्द्रभागा की ओर संकेत कर] इस चन्द्रभागा की तरह मेरा भी रहस्य है। पता नहीं आप को··· आप शङ्का से देख रहे हैं। आपकी दृष्टि मेरे भीतर गड़ी जा रही है। बदरिकाश्रम से लौट कर मैं आपके पास आऊँगी···तब तक मैं इस योग्य बन सकूँगी कि आपसे सत्य कह सकूँ। किन्तु आज एक काम हो जाना चाहिए।

नारायण

क्या····

मेनका

[चन्द्रभागा की ओर संकेत कर] इसका सुमित्र के साथ विवाह····

नारायण

सुमित्र ! वह तो इस आश्रम से····

मेनका

जी नहीं वह लौट आया।

नारायण

लौट आया [प्रसन्न मुद्रा में] कहाँ देखा आपने उसे····

मेनका

नारद और संकृत के साथ····

नारायण

संकृत भी आ गये···

मेनका

जी····जिस समय युद्ध हो रहा था सभी एक ही साथ।

नारायण

हूँ····[सोचने की मुद्रा में] यह संकृत कैसे हैं ?

मेनका

[दोनों हाथ ऊपर उठाकर] बहुत ऊँचे···हिम की तरह गौर, हिम से बाल आचार्य का धनुष कन्धे में अपने डाल कर·· अपनी बाहें उनके गले में······ ऐसी बातें कर रहे हैं जैसे उनके लड़कपन के मित्र हों।

नारायण

और राजर्षि का धनुष····?

मेनका

वह तो नारद ने सुमित्र को दिला दिया ! वह सुकुमार उस धनुष के भार से ऐसा झुका जा रहा है जैसे कोई स्त्री हो ।

नारायण

यही तो उसकी सबसे बड़ी कमी है । पौरुष का उसके भीतर लोप हो चुका है और धीरे-धीरे ठीक किसी कुमारी की तरह वह लज्जालु भी होता जा रहा है ।

मेनका

उसकी औषधि मैं जानती हूँ···

नारायण

क्या···

मेनका

बजाने को उसे वीणा न देकर शंख दिया जाय । उसका पौरुष उभर आयेगा । संगीत, नृत्य और चित्र पुरुष को पुरुष नहीं रहने देते ।

नारायण

ठीक कह रही हैं आप ···यक्षों ने इन कलाओं का इतना अधिक अभ्यास किया कि उनकी प्रवृत्ति ही मरते-मरते मर गई । नारी की यहाँ तक कि भोजन और जल की आवश्यकता भी उनकी संगीत से ही मिटने लगी ···अन्त में उनका नारी और नर का भेद ही मिट गया ···उनमें सन्तानोत्पति ही रुक गई और अब [**पर्वत की ओर हाथ उठाकर**] उधर उनका कहीं पता नहीं । उनके निर्जन नगर अपने शिखरों और सोने के कलश लिए अभी भी खड़े हैं । उनका वाटिकाओं में रंग-रंग के फूल अभी भी फूल रहे हैं । जर्जर वृद्ध यक्ष और यक्षिणी थोड़ी संख्या में बच रहे हैं किन्तु न तो कहीं बालक हैं और न कहीं बालिकाएँ···· कुमार और कुमारियाँ भी नहीं हैं ।

मेनका

आह ! वह स्थान कैसा लगता होगा ?

नारायण

वही स्थान है जहाँ पहुँच जाने पर प्रकृति पुकार-पुकार कर कहने लगती है जो प्रकृति धर्म को छोड़ कर बहुत बड़े बन जाते हैं प्रकृति उन्हें मिटा देती है।

मेनका

हूँ...

नारायण

राजर्षि भी इस प्रकृति धर्म को छोड़ने की बात कह रहे थे और उसी का परिणाम हुआ यह युद्ध। हमारे पूर्वजों ने जो भूल की उसे हमें समझना है। उसे समझ कर हमें फिर प्रकृति के मार्ग पर लौट आना है।

मेनका

सम्भवतः अब राजर्षि भी इस बात को समझ गये होंगे।

नारायण

मुझे भी ऐसा ही लगता है। सोचिये सुमित्र और इस चन्द्रभागा की अवस्था के कुमार-कुमारी यदि वैराग्य ही पढ़ें तो क्या प्रकृति कभी इन्हें क्षमा करेगी ? प्रकृति प्रतिहिंसा में कभी नहीं चूकती।

मेनका

[गद्गद् स्वर में] इसीलिए तो मैं कहती हूँ इन दोनों का परिणय करा दें... जिसमे इनके भीतर प्रकृति अपने को खोल कर बिछा दे।

नारायण

आपका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है... इस स्थिति में अब दूसरा कोई

मार्ग नहीं। चन्द्रभागा ! [वह मौन रहती है] ठीक है वह क्या कहेगी। इस प्रसंग में उसका कुछ भी कहना अशोभन होगा।

मेनका

[चन्द्रभागा के कन्धे पर हाथ रखकर] बोलती क्यों नहीं रे !

[चन्द्रभागा उसके पीछे उसकी पीठ पर सिर टेककर खड़ी होती है]

नारायण

नहीं ···नहीं····जाने दें····यह भी उसी की प्रकृति उसे छिपा देना चाहती है। मेरे विचार में आज एक नई बात आ रही है।

मेनका

आप तो जैसे सब कुछ नया कर देने पर ही तुले हैं। आपकी आँखें कह रही हैं आप यह सब कुछ मिटा देना चाहते हैं।

नारायण

नहीं····सब कुछ तो नहीं किन्तु कुछ तो मैं आज मिटा दूँगा। [गंभीर मुद्रा में] कुमारों और कुमारियों का अध्ययन अब एक साथ एक स्थान पर न हो।

मेनका

[विस्मय में] ऐं अब आप यह करेंगे ?

नारायण

हाँ····इस प्रकार इनके भीतर प्रकृति अपने शुद्ध रूप में रहेगी। प्रकृति मारी नहीं जा सकती केवल उसका संस्कार किया जा सकता है और उसके लिए कुछ बाहरी नियम बनाने पड़ेंगे।

मेनका

किसी निश्चित अवस्था तक ये साथ रखे जा सकते हैं और फिर उसके बीतने पर····

नारायण

यह अवस्था सब किसी के लिए एक ही न होगी…किसी की रात पहले होगी और किसी का दिन पहले होगा। और फिर यदि नियम बनाने हैं तो फिर मध्य बिन्दु खोजने से काम न चलेगा।

मेनका

तो फिर इन कुलों से आप कुमारियों को निकाल देंगे?

नारायण

किसी से कुमारों को और किसी से कुमारियों को। साथ-साथ रहने से इनकी प्रकृति का भेद मिटने लगता है। लोककल्याण इसी में है कि इनकी प्रकृति का भेद बना रहे…जिस अंश तक इनकी प्रकृति का भेद बना रहेगा उसी अंश तक ये परस्पर आकर्षित होंगे…मित्र और साथी बनेंगे। यक्षों में दिन-रात नर और नारी के साथ ही साथ रहने की जो प्रथा चली उसमें उनके आकर्षण का संघर्ष मिट गया और आज हम देखते हैं कि उनकी जाति ही मिट गई। हमारी शिक्षा का मूल मन्त्र इस समय जाति-रक्षा है और उसके लिए हमें कड़े से कड़े नियम बनाने पड़ेंगे।

मेनका

किन्तु कड़े नियमों में प्रकृति का शुद्ध रूप बचा रहेगा?

नारायण

प्रकृति ने अपने लिए ही कितने कड़े नियम बनाये हैं। बस उन्हें ही समझ लेने पर हमारी कठिनाई मिट जायेगी। प्यास लगने पर ही पानी की इच्छा होती है और भूख लगने पर ही भोजन आवश्यक होता है। यक्षों की तरह स्त्री-पुरुष का बराबर साथ बना रहना तो बस दिन-रात भोजन करते रहना और जल पीते रहना है…किन्तु प्रकृति के लिए

यह सब असह्य है। प्रकृति ने हमें विवेक दिया है केवल प्रकृति के संस्कार के लिए। मनुष्य और पशु में बस यही इतना भेद है।

मेनका

[गंभीर चिन्ता में] तब मेरे लौटने पर यहाँ कुमार और कुमारी साथ न मिलेंगे।

नारायण

नहीं···जो करना है वह तुरत होना चाहिए और इस समय मेरा यही प्रधान कर्म है। सदाचार का मान दण्ड जो हम वृद्ध विचारक बनाते हैं, तरुण प्रवृत्ति उसे तोड़ने में ही लगी रहती है···हम कहते हैं यह सब अनाचार हो रहा है···हम जिन्हें कुछ दिनों में मरना है अपने बच्चों को जीने देना नहीं चाहते···

मेनका

समझ नहीं रही हूँ महर्षि ! अब तो जैसे एकदम आप दूसरी बात कह रहे हैं।

नारायण

नहीं तो राजमहिषी ! जिसे हम अनाचार कहते हैं उसका अवसर ही कम आने दें। हम अपने कुरुकुलों और जनपदों में भी ऐसे नियम, ऐसे विधान चालू करें जिसमें भूख लगने पर ही भोजन मिले और प्यास लगने पर ही जल। किसी के भी पास अपव्यय के लिए अधिक न रहे। धन, प्रणय और विद्या किसी का भी अपव्यय समाज को रोगी बना देता है।

मेनका

यह सब मैं न समझ सकूँगी महर्षि ! समझना चाहती तो हूँ···किन्तु समझ नहीं पाती। इसका विवाह करा दें आप सुमित्र से और मैं इन दोनों को अपने साथ ले जाऊँ।

नारायण

बदरिकाश्रम आप इन्हें ले जायेंगी ?

मेनका

बदरिकाश्रम ही क्यों जाना है मैं तो यह भी नहीं समझती। राजर्षि की छाया की तरह मुझे उनके साथ रहना है। इन दोनों का साथ-साथ रहना मुझे देखना है···इसमें मुझे सुख मिलेगा।

नारायण

राजर्षि बदरिकाश्रम क्यों जा रहे हैं आप कुछ जानती हैं ?

मेनका

कदाचित् देवर्षि नारद के कहने से····देवर्षि को पता चला कि वे सारी रात जागते हैं·· जब कभी उन्हें नींद आती है उनके पिता स्वप्न में उन्हें दिखाई पड़ते हैं·· कभी नींद में ही रोने लगते हैं···कभी हँसने लगते हैं·· क्या कहूँ·· [**उसका स्वर भारी हो उठता है और वहीं धरती पर बैठ कर सिसकने लगती है**]

नारायण

[**आगे बढ़ कर उसके सिर पर हाथ रख कर**] नहीं····नहीं आप इतनी अधीर न हों। मैं आपका कष्ट समझ रहा हूँ। राजर्षि इस मनः स्थिति में भी अभी तक रणनिपुण और नीतिनिपुण हैं अपने बल से नहीं आपके बल से।। मैं यह सुन चुका हूँ कि उन्हें सुलाने के लिए आप सारी रात उनके शरीर पर हाथ रख कर बैठी रहती हैं।

मेनका

लेकिन यह सब निष्फल हो रहा है महर्षि !

नारायण

नहीं निष्फल होगा। आप अपने पुत्र के साथ कभी इस आश्रम

को धन्य करेंगी। मुझे विश्वास है और किसी दिन मेरा यह विश्वास आपके लिए भी....

मेनका

[**उनके चरणों पर सिर रख कर**] किन्तु जब तक उनका यह रोग ...

नारायण

जो सनातन से चला आता था...उसमें कुछ भी परिवर्तन राजर्षि के पिता नहीं चाहते थे....किन्तु परिवर्तन ही सनातन है। पश्चिम से श्वेत आक्रमणकारी नगरों को, जनपदों को भस्म करते हुए बढ़े आ रहे थे....शरीर से नहीं तो कम से कम बुद्धि से तो उन्हें रोकना ही था किन्तु वे इसके लिए तैयार न थे। राजर्षि ने जाति-रक्षा और जाति-रक्षा में ही धर्म-रक्षा देखकर अपने पिता का षड्यन्त्र से बध कराया। लोक कल्याण में अपने पिता का भी मोह उन्होंने छोड़ दिया इसीलिए वे आज राजर्षि हैं।

मेनका

तब फिर वे इतने भयभीत, इतने अधीर क्यों रहते हैं ?

नारायण

पिता और पुत्र का भौतिक सम्बन्ध भी कम महत्व का नहीं है। व्यक्ति समाज के लिए रह कर भी व्यक्ति होता है। उनका लोक रक्षक होना ही उन्हें इस पितृघात के पाप से मुक्त करेगा।

[**कुटी की ओर से नारद, प्रह्लाद और सुमित्र का प्रवेश। मेनका जाना चाहती हैं।**]

नारायण

उसके साथ आप उस आसन पर बैठ जायँ। राजर्षि की चित्तवृत्ति देखिये अभी कितनी सम्हल जाती है।

[**चन्द्रभागा की बाहँ पकड़ कर मेनका किनारे की ओर एक आसन पर बैठ जाती है ।**]

प्रह्लाद

[**हाथ जोड़ कर नारायण के समीप पहुँचते हुए**] मेरी प्रतिज्ञा कट गई महर्षि । आपके विधान की विजय है ।

नारायण

[**उनकी बाँह पकड़ कर जिस पर कोई हरा लेप लगा है और किसी लता की पट्टी बँधी है**] आपको बाण लग गया । [**उन्हें एक आसन पर बैठा कर नारद की ओर देखते हुए**] देवर्षि ! यदि आपसे कुछ देर हुई होती तो आज क्या होता ।

प्रह्लाद

[**ऊपर आकाश की ओर हाथ उठा कर**] मैं या आचार्य....

नारद

[**मुस्करा कर**] नहीं राजर्षि ! यह सृष्टि जिसकी है वह सर्वशक्तिमान मंगल रूप है । उसकी प्रेरणा में ही यह चक्र चल रहा है । तुम दोनों को अभी इसी धरती पर रह कर बहुत कुछ करना है अभी तुमने किया क्या ?

प्रह्लाद

मुझे अभी और भी कुछ करना है ...मुझसे जो कुछ अब तक हो गया देवर्षि ! मुझे उसी से मुक्त कीजिये ।

नारद

कर्म का बन्धन कर्म से ही कटता है । उससे मुक्त होने के लिए ही तुम्हें कर्म करने होंगे ।

प्रह्लाद

दुःख है मैंने आचार्य पर भीषण बाणों का प्रयोग किया उन्हें मेरे कई बाण लग गये हैं ।

नारायण

यही तो युद्ध धर्म है । आपने ठीक अर्थ में कर्म किया है ।

प्रह्लाद

मेरे बाण लगने पर भी उनकी आकृति पर क्रोध नहीं आया ।

नारायण

देवर्षि ! युद्ध के अवसर पर भी आप वीणा बजा लेते हैं ?

नारद

युद्ध और वीणा बजाने में मैं कोई अन्तर नहीं देखता । कर्म किसी भी कोटि का हो जब उसमें मन रम जाता है सब कुछ एक-सा लगता है ।

प्रह्लाद

दूर से ही जब वीणा की ध्वनि मेरे कान में पड़ी मेरे अंग शिथिल पड़ने लगे यही दशा आचार्य की भी हुई और जिस समय देवर्षि हमारे बीच में आ गये हमारे हाथ धनुष के साथ सट गये । हाथ धनुष पर लगे रहे और मन वीणा में जा लगा ।

नारद

आप अपने कर्म में लगे थे और मैं अपने कर्म में था । नर ने जिस समय आपकी प्रत्यञ्चा काट दी यह युद्ध तो तभी रुक जाना चाहिये था किन्तु आपने पलक मारते दूसरी प्रत्यञ्चा चढ़ा ली । उस समय आप युद्धमय हो रहे थे·· मैंने देखा आप प्रलय करने पर ही तुले हुये थे···

नारायण

और आप ठीक प्रलय के भीतर पहुँच कर वीणा बजाने लगे ।

नारद

मैं अपने इस स्वभाव से बाध्य हूँ । यह सृष्टि चलती रहे···चलती

रहे प्रलय की कामना मानव धर्म नहीं है। मनुष्य के जन्म में प्रकृति अपनी रक्षा प्रलय से करती है। इसलिए निर्माण की शक्ति उसने केवल मनुष्य को ही दी है।

प्रह्लाद

मैं उद्धत् हो गया महर्षि मुझे इसका खेद है।

नारायण

कर्म कभी भी खेद का कारण नहीं होता राजर्षि! कर्म के मूल में ही परमेश्वर का भाव है ...हम लोग किसके लिए खेद करेंगे। आपसे जो कुछ भी कर्म अब तक हुआ है ...उसके लिए खेद आप न करें। शुभ और अशुभ जो कुछ भी है...जिसका है उसे सौंप दें।

[प्रह्लाद गनगना उठते हैं ..उनकी आकृति धूमिल हो जाती है! नारायण उनके कन्धे पर हाथ रखते हैं] आपने जो कुछ भी किया अपने लिए नहीं किया ...लोक के लिए...मानवता के लिए और इसीलिए परमेश्वर के लिए ..बस यही इतना मान लेने पर आपका संकट कट जायेगा।

नारद

मैं केवल वीणा बजा सकता हूँ ..यदि यही इतना कहना मुझे आता तो अब तक राजर्षि का संकट कट गया होता।

नारायण

किन्तु यह सब वहीं सफल है जहाँ आपकी वीणा अमृत बरसा कर द्रोह, दम्भ और पाखण्ड धो चुकी है। धर्म जड़ और निर्जीव नहीं है वह चेतन और सजीव है और चेतन और सजीव सदैव परिवर्तन और संस्कार पर ही टिका है। परिवर्तन और संस्कार केवल मृत्यु में नहीं होता, किन्तु धर्म मृत्यु नहीं अमरत्व है।

प्रह्लाद

[**प्रसन्न मुद्रा में**] यही यदि मैं पहले जानता···तब क्यों इतने दिनों तक····

नारायण

किन्तु पहले कैसे जानते आप ? सारी अवस्थाएँ अपने समय पर ही आती हैं यहीं हम विवश हैं इसीलिए परमेश्वर की कृपा का सहारा है।

[**नर और संकृत का प्रवेश। संकृत आगे बढ़कर नारायण के पैरों पर झुकते हैं। नारायण उन्हें पकड़कर उठा लेते हैं।**] यह क्या भद्र !

संकृत

नर के जान लेने पर नारायण को जान लेना मेरे लिए सुगम हो गया है ! मैं आया था यहाँ तर्क करने और यह सिद्ध करने कि धर्म व्यक्ति और जाति की रुचि की वस्तु है।

नारायण

हम आपके साथ समन्वय के लिए सदैव तत्पर रहेंगे।

संकृत

आचार्य के पिछले पर्यटन में मैंने उन्हें अधिक से अधिक उत्तेजित करना चाहा था किन्तु वे पर्वत की तरह अडिग रहे और आज इस युद्ध में उनके धैर्य, विनय और शील ने मेरा सारा तर्क और दम्भ धोकर बहा दिया है। मैंने समझ लिया सत्य शब्द का नहीं आचरण का होता है। जो महापुरुष नर का गुरु है मेरा भी गुरु है। उसके सामने मुझे नतमस्तक रहना है।

नर

मेरी प्रशंसा आप कहीं ऐसे स्थान पर करेंगे जहाँ मुझे लज्जित न होना पड़े यहाँ गुरुजनों के बीच में····

संकृत

जल जब नदी के पेटे में नहीं समाता किनारों पर फैल जाता है आचार्य ! तुम्हारे शरीर में जहाँ-जहाँ वाण लगे थे अपने हाथ से लेप लगा कर मैंने रक्त रोका है। आत्म संयम की शिक्षा तो मुझे तुम्हारे आज के आचरण से मिल गई। अपनी चिन्ता तुम्हें न हुई...अपने प्रतिद्वन्दी के साधारण खरोंच का उपचार तुमने स्वयं किया। युद्ध में भी जैसे तुम्हारी आकृति आनन्द की चाँदनी में नहा रही थी। मर्मस्थल के जिस एक वाण से सिंह धरती पर लोट जाता वैसे सात वाणों के लगने पर भी तुम्हें नाम को भी क्रोध न हुआ ...!

नर

हम मांसाहारी नहीं हैं आर्य ! [**प्रह्लाद वेग से नर की ओर बढ़ते हैं**]

सकृत

हम भी अब मांसाहारी नहीं रहेंगे आर्य !

[**प्रह्लाद नर के पैरों पर सिर रख देते हैं। संकृत झपटकर उन्हें अपनी ओर खींच लेते हैं।**] क्या कर रहे हो राजर्षि ! तुम्हारे प्रति उनके हृदय में जितनी दया, जितनी ममता है उतनी तो पुत्र के प्रति किसी पिता में भी न होगी ? युद्ध में ही तुम्हारी आकृति से अग्नि बरस रही थी तुमने नहीं देखा इनकी आकृति पर करुणा का चन्द्रमा खेल रहा था। किन्तु तुम जीवित हो....इसलिए नहीं कि तुम उनसे बड़े धनुर्धर हो... इसलिए कि उन्होंने तुम्हें जीवित रखना चाहा।

प्रह्लाद

मैं मानता हूँ नहीं तो प्रत्यञ्चा कटने के साथ ही मेरा सिर भी कट गया होता।

संकृत

तब तुम उनसे अब क्या चाहते हो ?

प्रह्लाद

क्षमा····

संकृत

किन्तु झुक कर तुम्हें उठाने में घाव खुल जायेंगे और रक्तस्राव··· [**नारायण की ओर देख कर**] महर्षि ! आत्म संयम प्रकृति का नियम न बदल देगा। ये जो खड़े-खड़े मुस्करा रहे हैं [**नर की ओर संकेत कर**] अधिक रक्त निकल जाने से इनकी शक्ति जा चुकी है। हमारी ओर कहा जाता है आप योग और औषधि से मृतक को भी जीवित कर देते हैं। इनका उपचार कीजिये।

नारायण

[**गंभीर मुद्रा में नर की बाहें पकड़कर**] नर····!

नर

कुछ नहीं····मैं स्वस्थ हूँ आप चिन्ता न करें [**उनके कन्धे पर सिर झुका देते हैं नारायण उनके सिर पर हाथ फेरते रहते हैं**]

नारायण

तुम्हें विश्राम और···[**गंभीर विचार में नारद की ओर घूम कर**] देवर्षि !

नारद

[**उनकी ओर देख कर**] मंगल····मंगल····आपके प्रभाव में अशुभ न····

नर

देवर्षि वीणा बजाते रहें···मुझे जो आनन्द और जीवन मिलेगा···

नारायण

ठीक है यही बात मेरे मन में भी आ रही थी और राजमहिषी !

[**मेनका की ओर देखते हैं—वह वेग से उनके निकट जाती है**] स्त्री किसी भी अवस्था की क्यों न हो प्रकृति से माता है और पुरुष किसी भी अवस्था का क्यों न हो प्रकृति से बालक है....देवर्षि के साथ आप इसका भार सम्हालें ...तब तक मैं औषधियों का योग ...

[**नर को सहारे से आसन के निकट पहुँचाते हैं। नर चित्त आकाश की ओर देखते हुए आसन पर लेट रहते हैं। नारद पद्मासन मार कर वीणा के तारों को रह रह कर झंकृत करते हैं। मेनका नर के सिराने बैठ कर उनके ललाट पर और जटा पर हाथ फेरती है। नर आँखें मूँद लेते हैं। नारायण चन्द्रभागा और सुमित्र को संकेत से बुला कर धीरे-धीरे उन दोनों से कुछ कहते हैं। दोनों साथ ही कुञ्जों की ओर बढ़ते हैं। प्रह्लाद और संकृत को भी वे संकेत से बुलाते हैं**] आप लोग भी तब तक कुटी में चलें....[**सब एक ही साथ कुटी की ओर बढ़ते हैं।**]

सुमित्र

[**रुककर**] क्या लाना है ?

चन्द्रभागा

[**ओंठ पर उँगली रख कर**] मधु, मृगमद, पय....तुम अभी भी काँप रहे हो !

सुमित्र

क्या कहूँगा ?

चन्द्रभागा

[**उसे ठेल कर आगे बढ़ती हुई**] अपना ...सिर ...[**दोनों ओझल हो जाते हैं। नारद वीणा बजाने लगते हैं। उनकी तन्मयता इतनी बढ़ जाती है कि उनका साँस लेना भी नहीं पता चलता। जैसे सारा वातावरण आनन्द की लहर में हिलने लगता है। नर की आकृति पर**

प्रसन्नता दौड़ जाती है। वे विस्मय में आँखें खोल कर आकाश की ओर देखते हैं। मेनका हथेली से उनकी आँखें बन्द करती है]

नर

देखने दीजिए मुझे····

मेनका

विश्राम····विश्राम ···

नर

मेरे रोम-रोम में सुख और सन्तोष फैल गया है मैं अब बैठूँगा।

मेनका

जब तक महर्षि न आ जायँ ·· मैं हिलने न दूँगी····मातृत्व का आग्रह भी है और अधिकार भी और अब एक शब्द नहीं [उनके मुँह पर हथेली रख देती है। वृक्षों से उतर कर पक्षी धरती पर बैठने लगते हैं··· सामने कुछ दूर पर कई कृष्ण मृग अपने सींग से धरती कुरेदते रहते हैं। विजयकीर्ति का प्रवेश। उनकी आकृति पर उद्वेग है। मेनका उन्हें वहाँ से हट जाने का संकेत करती है वे क्षण भर सन्न खड़े रहते हैं फिर धीरे-धीरे एक ओर निकल जाते हैं। पक्षियों के निकट से वे जाने लगते हैं किन्तु पक्षी अपनी जगह से हिलते भी नहीं। प्रकृति में कहीं कोई शब्द नहीं सुनाई देता। मेनका घुटनों में आँखें छिपा लेती है उसका शरीर धीरे-धीरे हिलता रहता है। कुटी के सामने चबूतरे पर प्रह्लाद और संकृत गंभीर मुद्रा में कभी-कभी परस्पर धीमे स्वर में कुछ कह लेते हैं। नारद वीणा बजाते हुए चारों ओर देखते रहते हैं उनकी आकृति पर भक्ति और विश्वास की आभा फैल जाती है। कमण्डल लिए नारायण का प्रवेश]

नारद

आचार्य !

मेनका

[सजग हो कर देखती हुई] अभी ···

नारद

[संकेत से मेनका को रोक कर] आचार्य !

नर

[तन्द्रा की स्थिति में] जी····मुझे कहीं भी पीड़ा नहीं है। केवल बोलना मैं नहीं चाहता अभी····मौन रहने में····संकृत के साथ महर्षि का समाधान हो जाता। उनके प्रति मेरे मन में विश्वास जम रहा है। जाति संघर्ष के स्थान पर मानवता में श्रद्धा····

नारायण

मैं यहीं हूँ सौम्य ! तुम्हें औषधि दे कर मैं यहाँ तुम्हारे सन्तोष के लिए अभी उन्हें बुलाता हूँ····

[देवदत्त के साथ सुमित्र और चन्द्रभागा का प्रवेश। काठ का पात्र चन्द्रभागा नारायण के समीप ले जाती है। नारायण वहीं पृथ्वी पर बैठ जाते हैं और उस पात्र का तरल मधु मिश्रित दूध कमण्डल में उड़ेल लेते हैं। खड़े होकर] और मृगमद····

देवदत्त

[आगे बढ़ते हुए] यह मेरे पास ···

[देवदत्त नारायण के समीप पहुँच कर हथेली खोलते हैं। नारायण उनकी हथेली से काले रंग का एक खण्ड लेकर नर के पास जाते हैं।] मुँह खोलो भद्र····

नर

[उनकी ओर देखकर] इसी प्रकार लेटे-लेटे···

नारायण

तरल है····

नर

नहीं····देवर्षि ने मेरी सारी पीड़ा हर ली है····अब मैं इस विवश स्थिति में नहीं रहना···

मेनका

दीजिए मुझे मैं इसी तरह पिला दूँ···

नर

मैं स्वस्थ हूँ ···वीणा के स्वरों में मैं सारा खगोल भ्रमण कर लौटा हूँ···जो अल्हाद जो सुख और जो पुलक····मन के प्रसन्न हो जाने पर शरीर की निर्बलता मिट जाती है। [उठने की चेष्टा करते हैं]

मेनका

महर्षि ! [उनकी ओर कातर दृष्टि से देखती है]

नारायण

बैठ जाने दीजिए राजमहिषी ! प्रबल इच्छा शक्ति रोग पर विजय प्राप्त करती है।

मेनका

अच्छी बात। किन्तु औषधि मैं पिलाऊँगी।

नारायण

[मुस्कराकर] ठीक है माता बालक के लिए किसी दूसरे का विश्वास नहीं कर सकती। यह मुँह में डाल कर तब।यह औषधि पिला दें [मेनका दायें हाथ में कृष्णखण्ड और बायें हाथ में कमण्डल लेती है। नर बाहों के सहारे उठ कर बैठ जाते हैं। मेनका उनके मुँह में मृगमद डाल कर दोनों हाथ से कमण्डल की पेंदीं पकड़े रहती है जब तक नर उसे पी नहीं जाते।]

नर

[**आग्रह की दृष्टि से**] संकृत कहाँ हैं ?

नारायण

राजर्षि ! [**बुलाने का संकेत हैं**] विजयकीर्ति का प्रवेश ।

विजयकीर्ति

[**नर के निकट आ कर**] आचार्य !

नर

[**मुस्करा कर**] क्यों भद्र ? ·· तुम इतने उतरे क्यों हो ? मैं स्वस्थ हूँ····मुझे कहीं कोई कष्ट नहीं है । यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो चलो मैं अभी तुम्हें लेकर पर्वत पर चढ़ चलूँ····

नारद

तो कदाचित् मुझे फिर वीणा बजानी होगी ।

नर

[**हाथ जोड़ कर**] जी नहीं··· आपकी वीणा मेरे स्नायु-जाल में झंकृत हो रही है अब तो असह्य हो उठेगा ।

विजयकीर्ति

मुझे आशंका थी मैंने महर्षि से कहा भी····

नर

तो क्या सब शुभ ही तो है । वह शरीर क्या जिस पर कभी आघात न पहुँचे ।

[**संकृत और प्रह्लाद का प्रवेश**]

नर

[**संकृत की ओर देख कर**] तो अब आप क्या कहते हैं आर्य !

संकृत

मुझे अब कुछ कहना नहीं है मित्र ! मुझे तो अब केवल करना है। जो मन्त्र आपने मुझे दिया …और आर्य कोई जाति नहीं हो सकती कर्म और आचरण में जो महान हैं सभी आर्य हैं। [**चारों ओर हाथ घुमा कर**] यहाँ जितने व्यक्ति हैं सभी आर्य हैं।

नारायण

स्वस्ति…स्वस्ति…स्वस्ति

संकृत

[**नर के समीप बैठ कर**] आपने कहा था, महर्षि कहते हैं, धर्म व्यक्ति का नहीं होता, जाति का नहीं होता वह तो प्रकृति का होता है। जिस भूखण्ड की प्रकृति का जो गुण और स्वभाव है उसी के अनुरूप उसके निवासियों का धर्म होता है। मैं देख रहा हूँ यही सत्य है। इस भूखण्ड की प्रकृति में ही प्रेम और तुष्टि है। भोजन के लिए हिंसा यहाँ अनाचार है। मैं अब मांसहारी नहीं रहूँगा और मुझे विश्वास है मेरी जाति भी मांसहार छोड़ देगी।

नारद

तो मैं अब यहाँ से चलूँ….

संकृत

क्यों देवर्षि !

नारद

मुझे तो वहाँ रहना है जहाँ संघर्ष है जहाँ अविश्वास और द्रोह है।

सकृत

आप मुझे प्रेरणा दें मैं यह संघर्ष, अविश्वास और द्रोह मिटा सकूँ….मैं आपको राजर्षि प्रह्लाद और महर्षि को अपने साथ ले चलूँगा

आपकी वीणा जिन्हें आप उद्धत यायावर कहते आये हैं उनके भीतर भी विश्वास और भक्ति उत्पन्न करेगा। महर्षि !

नारायण

जी....

संकृत

आप मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार कर लें। विजेता और विजित का भाव मिट जाय !

नारायण

मैं आपका आदेश ...

संकृत

आदेश नहीं आग्रह ...मैं आचार्य का बन्धु बन जाना चाहता हूँ और वह तभी होगा जब आप मुझे भी दीक्षित करें [**उठकर नारायण के पैरों पर सिर रख देते है नारायण हँसते हुए उन्हे छाती से लगाते हैं**]

नारायण

[**आकाश की ओर देख कर**] तो आज से आगन्तुकों के साथ द्रोह नहीं...

संकृत

आने वाले अपनी अलग जाति बना कर न रहेंगे। आप में ही ऐसे मिल जायेंगे कि भविष्य उन्हें अलगकरने की चेष्टा में कभी भी सफल न होगा। आपका धर्म, विश्वास, योग और ज्ञान उनका आधार होगा। उनकी भाषा, उनका आचरण तो अभी ही आपके प्रभाव में आ चुका है।

नर

आइये आप यहाँ मेरे समीप। बन्धु वही है जो निकट रहे।

संकृत

[हँसते हुए] जिसके शब्द सीधे मर्म तक पहुँचते हैं वह अपना मर्म नहीं बचा पाता····

नर

[मुस्करा कर] तो मैं अपना मर्म नहीं बचा पाया···क्या कहा आपने····

संकृत

[नर के पास बैठकर] इसे भी सिद्ध करना होगा · वह तो बाणों के लिए खोल दिया गया था।

नर

मेरा मर्म उस समय मेरे शरीर में नहीं राजर्षि के शरीर में था और मैंने उसे बचा लिया। [मेनका गनगना उठती है]

संकृत

महर्षि ! यह तो उत्सव का अवसर है। आनन्द के आवाहन के लिए इससे बढ़ कर दूसरा अवसर क्या होगा।

नारायण

उत्सव का प्रस्ताव तो राजमहिषी कर चुकी हैं [सुमित्र और चन्द्रभागा की ओर संकेत कर] इन दोनों का विवाह···वह चाहती हैं आज ही हो जाय। किन्तु इनके कुल और कुटुम्ब····

संकृत

अच्छा तो यही वह कुमारी है जिसके निवारण के लिए यह गुरु कुल से और जीवन से भी निकल भागा ? इसमें कोई बाधा नहीं है। मैं उस कन्या की माता को जानता हूँ और सुमित्र के पिता मेरे शिष्य

रह चुके हैं। आप लोग तो कन्यादान की विधि मानते हैं कन्यादान कौन करेगा?

प्रह्लाद

प्रस्तावक की इच्छा क्या है···[मेनका की ओर देखते हैं]

मेनका

हम दोनों कन्यादान करेंगे आर्य !

संकृत

इस सम्बोधन के अधिकारी यहाँ महर्षि नारायण और देवर्षि नारद रहें इनकी अनुपस्थिति में हमें भी यह अधिकार रहेगा ?

नारायण

[देवदत्त की ओर देख कर] लग्न है आज ?

देवदत्त

जी नहीं··· पन्द्रह दिन नहीं····

नारायण

तब···

संकृत

उत्सव महर्षि ! और आपने···ओषधियों के लिए जाते समय कहा था आप अब सहशिक्षा नहीं रहने देंगे···इसी उपलक्ष में आप सम्मिलित उत्सव करावें ! देवर्षि की वीणा एक बार फिर बजे। गीत मैं बनाऊँगा और गाने वाले होंगे यहाँ के कुछ कुमार और कुमारी··· भविष्य में तो ये अब एक साथ रहेंगे नहीं····

नारायण

नहीं···यदि आप मेरा विचार ठीक न समझें····

संकृत

जी नहीं जितने सिर उतने ही विचार....यह तो विप्लव है। विधायक अनेक नहीं होते। आपका निर्णय भ्रामक नहीं हो सकता कम से कम उसका प्रयोग तो किया ही जायेगा। और आपकी युक्तियाँ प्रकृति के अनुकूल लग रही हैं। मैं गीत बनाने जा रहा हूँ....तब तक देवर्षि वीणा का मान भङ्ग करें। [सब हँस पड़ते हैं संकृत का प्रस्थान]

नारायण

हम समझते थे यह व्यक्ति दानव है किन्तु ऐसे व्यक्तियों से जो अहंकार छोड़ कर समन्वय का स्वागत करें, मानवता धन्य होती है।

नर

मुझे इन्हें देख कर आज स्वयं विस्मय हो रहा है। ये तब क्या थे और अब क्या हो गये हैं!

नारायण

सृष्टि में ऐसे विस्मय न हों तब फिर सृष्टि में रस ही क्या रहेगा। इसमें जहाँ जो कुछ भी महान है वह सभी विस्मय का उद्बोधक है। विस्मय से अभिभूत होने ही पर महत् का अनुभव होता है।

प्रह्लाद

महर्षि! [कुटी की ओर संकेत कर] अभी मुझसे वहाँ जो बातें कर रहे थे मेरे त्याग और यश की अनेक ऐसी बातें जिन्हें मैं स्वयं नहीं जानता।

नारायण

जान लेने पर त्यागी का त्याग और यशस्वी का यश मिट जाता है। [देवदत्त से] भद्र! कुछ कुमार-कुम ' जिनका कण्ठ सस्वर हो अतिथि की इच्छा हमें पूरी करनी है...आज तो उनका सन्तोष हमारा सन्तोष है।

[देवदत्त का प्रस्थान। संकृत का प्रवेश। उनके हाथ में भुर्जपत्र और काली शलाका है।]

नर

लाइये इधर मैं देखूँ आपके उत्सव का गीत।

संकृत

गाने वाले आ जायें और देवर्षि की वीणा तो अभी मानिनी बनी है। मैं भी उनके साथ गाऊँगा तब सुन लेना।

नर

बन्धु के साथ गोपनीय कुछ नहीं होता····

संकृत

[भुर्जपत्र उनकी ओर बढ़ा कर] तो इस आग्रह के सामने मुझे बराबर झुकना ही पड़ेगा। महर्षि मैं आया था यहाँ उन बन्धनों को काटने जिनमें हमारे जनपद बँध रहे हैं····अपनी जाति के धर्म, विश्वास और आचार को आपके प्रभाव से मुक्त करने मैं यहाँ आया था और यहाँ आकर मैं स्वयं बन्धन में पड़ गया **[नर की ओर संकेत कर]** इन्होंने मुझे कितना विवश कर दिया।

नर

[मुस्करा कर] जी···बन्धुत्व केवल अधिकार ही नहीं है विवशता भी है और यदि आपको उसका खेद हो···आप हम लोगों से अपने को स्वतन्त्र कर लें किन्तु हमारी प्रकृति से आप अपने को कैसे स्वतन्त्र करेंगे।

संकृत

[चारों ओर देख कर] तो यह बन्धन तुम्हारा नहीं है बन्धु! तुम्हारी प्रकृति का है। तुम्हारी इस प्रकृति का जिसने तुम्हें जन्म दिया है और जो तुम्हारे कारण अपने गौरव से झुक रही है। देवर्षि! अब

आप वीणा बजाइये जिसमें मेरा यह बन्धन सनातन बन चले...कुछ वैसी ही जैसी आप युद्ध में बजा रहे थे। जिसमें मनुष्य क्या पशुओं और वृक्षों से भी शील चू रहा था।

नर

[भुजपत्र दिखा कर] लेकिन यहाँ नर के स्थान पर संकृत होगा।

सकृत

क्या कहा...

नर

[मुस्करा कर] यही जो आपके गीत का पहला पद है [साधारण गीत के स्वर में] नर नारायण नारद...यहाँ नर नहीं संकृत होगा। आपकी यह स्वस्ति की कामना केवल हमीं लोगों के लिए न हो कर आपके लिए भी हो और आप नहीं गायेंगे मैं गाऊँगा...आपका गीत मैं गाऊँ इसी में हमारी इस प्रकृति का बन्धन सनातन होगा।

[देवदत्त के साथ दो कुमारों और दो कुमारियों का प्रवेश] तुम सब चले आओ यहाँ मेरे समीप और राजमहिषी आप भी यहाँ... अपनी दाईं ओर संकेत करते हैं। मेनका वहाँ बैठ जाती है। उन दोनों के सामने कुमार-कुमारी सब बैठ जाते हैं।

मेनका

महर्षि! सुमित्र और चन्द्रभागा को साथ ले कर आप सब लोग देवर्षि के समीप बैठ जाइये।

संकृत

और मैं...

नर

[गद्गद् कण्ठ से] महर्षि और देवर्षि के साथ...उन लोगों के

निकट मेरा जो स्थान था उस पर मैं आज आपको प्रतिष्ठित कर रहा हूँ आप मुझे सब ओर से सन्तुष्ट कर रहे हैं फिर यही क्यों शेष रहे।

[संकृत विवश स्थिति में मुस्कराते हुए नारायण के साथ बैठते हैं।] देवर्षि ! आप वीणा सम्हालिए....इस स्वस्ति-गान में आपकी वीणा कल्याण और अमृत बरसाती रहे।

[मेनका के साथ नर गीत आरम्भ करते हैं और उनके सामने बैठे कुमार-कुमारी उसे दुहराते चलते हैं]

गीत

संकृत, नारायण, नारद,
राजर्षि, मेनका स्वस्ति स्वस्ति;
बन, उपवन, भूधर, सरिता;
यह स्वस्ति विश्व; यह स्वस्ति व्योम;
यह स्वस्ति-लोक-मंगल विधान।
कल्याण-कल्पतरु हों जनपद;
फूलें जिनमें मोहक अनेक
ये स्वस्ति चन्द्रभागा सुमित्र;
यह स्वस्ति प्रणय यह स्वस्ति प्रेम।
संकृत नारायण नारद...

[वीणा और गति की तन्मयता में वस्मय और आल्हाद का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।]

संकृत

[जैसे अकस्मात्] यही सनातन है ?

नारायण

और यही नारद की वीणा है।

पर्दा गिरता है।